

श्रावक

प्रतिक्रमण

सूत्र

- विजय कुर्नि

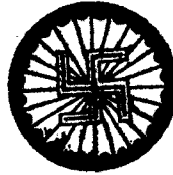
सन्मति ज्ञानपीठ, अगारा

सन्मति साहित्य-रत्नमाला का ६१ वाँ रत्न

# श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र

व्याख्याकार :

विजयमुनि शास्त्री, साहित्यरत्न



श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

**पुस्तक :**

श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र

**व्याख्याकार :**

विजयमुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

**प्रकाशक :**

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

**मुद्रक :**

मनोज प्रिंटिंग प्रेस, आगरा २

**तृतीय प्रवेश :**

सन् १९८६, महावीर जयंती

**मूल्य :**

५-००

# समर्पण

जिनकी पावन-प्रेरणा ने  
जिनकी सतत-भावना ने  
जिनकी निशादिन की रटना ने

मुझे  
कलम पकड़ने को  
तैयार कर ही दिया

प्रेरणा, भावना एवं रटना  
की

उस भव्य-मूर्ति  
मुनि श्रीअखिलेश जी  
को

सादर  
सभक्ति  
समर्पण

—विजय मुनि

# दो शब्द

मनुष्य की जिस मनोभूमि में विचारों के सुन्दर अंकुर प्रस्फुटित होते हैं, मनुष्य की उसी मनोभूमि में विकारों की घास-पात भी उत्पन्न हो जाती है। विचार का विकास करना और विकार का विनाश करना — यह साधकजीवन का चरम ध्येय-बिन्दु है। उस पर पहुँचने के लिए प्रतिक्रमण की अध्यात्म-साधना—एक मंगलमय माध्यम है।

मैं कौन हूँ ? मैं क्या हूँ ? अपने अन्दर ही अपनी इस खोज को प्रतिक्रमण कहा गया है। स्वभाव से निकल कर, विभाव में पहुँच गये हों, तो फिर वापस लौट कर, स्वभाव में आना प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण, साधक जीवन की संपुष्टि के लिए अमृत है। प्रतिक्रमण की साधना, परम आवश्यक तत्व है।

श्रमण और श्रावक, दोनों के लिए प्रतिक्रमण करना आवश्यक माना गया है। प्रतिदिन सायं तथा प्रातः अवश्यमेव करणीय होने के कारण ही इसको अवश्यक भी कहा है। प्रतिक्रमण आत्मसंशुद्धि का परम साधन है।

प्रस्तुत पुस्तक श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र है। श्रावक-प्रतिक्रमण अनेक प्रकाशित हुए हैं, तथापि जनता की ओर से एक शुद्ध एवं व्याख्या-सहित उपयोगी संस्करण की बराबर मांग रही है। श्रावक प्रतिक्रमण का सम्पादन कोई सरल काम नहीं है। विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के श्रावक प्रतिक्रमण प्रचलित हैं। उनमें एकरूपता का अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन कैसा हुआ है ? इसका समाधान पाठक स्वयं करें।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में पूज्य गुरुदेव के दिशादर्शन से मुझे बड़ा बल मिला है। इस कार्य की पूर्ति उनके दिशादर्शन के बिना सर्वथा असम्भव थी।

पुस्तक के संकलन, सम्पादन एवं व्याख्या में भूलों का पता लगने पर अथवा पाठकों का सुझाव आने पर, सुधारने का यथोचित प्रयत्न किया जा सकेगा।

—विजयमुनि

# प्रकाशक की ओर से

अध्यात्म-साधना में, प्रतिक्रमण की बड़ी महिमा है। जीवन-शोधन की प्रक्रिया को ही वस्तुतः प्रतिक्रमण कहा गया है। प्रतिक्रमण अध्यात्म साधना का मूल आधार है।

प० विजयमृनिजी शास्त्री ने श्रावक-प्रतिक्रमण-सूत्र लिख कर, एक प्रशंसनीय कार्य किया है। शुद्ध मूलपाठ, अर्थ और व्याख्या; प्रस्तुत रूप में श्रावकप्रतिक्रमण-सूत्र के तृतीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए, हमें बड़ा सन्तोष तथा हर्ष हो रहा है। प्रारम्भ में सामायिक-सूत्र भी शुद्ध मूलपाठ, अर्थ एवं संक्षिप्त व्याख्या के साथ इसमें जोड़ दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में श्रावक के बारह व्रतों की व्याख्या और प्रत्येक व्रत के अतिचारों की व्याख्या सरल तथा सुगम भाषा में दी गई है। आशा है, पाठक प्रस्तुत पुस्तक से लाभ उठा कर लेखक और प्रकाशक के श्रम को सफल करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक को सुन्दर बनाने में, और शीघ्रता से मुद्रित करने में मनोजप्रेस के प्रबन्धकों एवं कंपोजिटर्स का श्रम सराहनीय है। उन्होंने जिस उदारता का परिचय दिया है, तदर्थ उन्हें धन्यवाद है।

—ओमप्रकाश जैन.

मन्त्री, सन्मति ज्ञानपीठ

# विषयानुक्रमणिका

विषय			पृष्ठांक
सामायिक सूत्र			
१. नमस्कारसूत्र	....	....	३
२. गुरु-वन्दनसूत्र	....	....	५
३. सम्यक्त्वसूत्र	....	....	६
४. गुरु-गुण-स्मरणसूत्र	....	....	६
५. आलोचनासूत्र	....	....	६
६. उत्तरीकरणसूत्र	....	....	१२
७. आगारसूत्र	....	....	१३
८. चतुर्विंशतिस्तव-सूत्र	....	....	१६
९. सामायिकसूत्र	....	....	१६
१०. प्रणिपातसूत्र	....	....	२१
११. समाप्तिसूत्र	....	....	२४
: परिशिष्ट :	....	....	२६
श्रावकप्रतिक्रमण-सूत्र :			
१. उपक्रम सूत्र	....	....	३५
२. संक्षिप्त प्रतिक्रमणसूत्र (अतिचार आलोचना)	....	....	३६
३. ज्ञानातिचार	....	....	४१
४. दर्शनातिचार	....	....	४३
५. प्रथम अहिंसा-अणुव्रत के अतिचार	....	....	४३
६. द्वितीय सत्य-अणुव्रत के अतिचार	....	....	४४
७. तृतीय अस्तेय-अणुव्रत के अतिचार	....	....	४५

विषय		पृष्ठांङ्क
८. चतुर्थ-ब्रह्मचर्य-अणुव्रत के अतिचार	....	४५
९. पंचम अपरिग्रह-अणुव्रत के अतिचार	....	४५
१०. षष्ठ दिशा-परिमाणव्रत के अतिचार	....	४६
११. सप्तम उपभोग-परिभोग परि० व्रत के अति०	....	४६
१२. पंच-दश कर्मादान	...	४७
१३. अष्टम अनर्ब-दण्ड-विरमणव्रत के अतिचार	....	४८
१४. नवम सामायिकव्रत के अतिचार	....	४८
१५. दशम देशावकाशिकव्रत के अतिचार	....	४९
१६. एकादश पीषधव्रत के अतिचार	...	४९
१७. द्वादश अतिथि-संविभागव्रत के अतिचार	....	५०
१८. संलेखना के अतिचार	....	५०
१९. अष्टादश पाप-स्थान	....	५१
२०. निन्यानवे अतिचार	....	५१
२१. समग्र अतिचार-चिन्तन	....	५१
२२. द्वादशावर्त गुरुवन्दनसूत्र	....	५२
श्रावकसूत्र :	....	
२३. मंगलसूत्र	....	५९
२४. सम्यक्त्वसूत्र	...	६०
२५. प्रथम अहिंसा-अणुव्रत	....	६१
२६. द्वितीय अत्य-अणुव्रत	....	६७
२७. तृतीय अस्तेय-अणुव्रत	....	७१
२८. चतुर्थ ब्रह्मचर्य-अणुव्रत	....	७५
२९. पंचम अपरिग्रह-अणुव्रत	....	७९
३०. षष्ठ-दिशाव्रत	...	८३
३१. सप्तम उपभोगपरिभोग-परिमाणव्रत	....	८६
३२. पंचदश कर्मादान	....	८९



विषय	पृष्ठाङ्क
३३. अष्टम अन्तर्धण्ड-विरमणव्रत	१००
३४. नवम सामायिक-व्रत	.... १०३
३५. दशम देशावकाशिक-व्रत	.... १०७
३६. एकादश पौषधव्रत	.... ११३
३७. द्वादश अतिथि-संविभाग-व्रत	.... ११८
३८. संलेखनासूत्र	.... १२१
३९. आलोचना	.... १२७
४०. अष्टादश पापस्थान	.... १२७
४१. उपसंहारसूत्र	.... १२८
४२. पाँच पदों की वन्दना (पद्य)	.... १२९
४३. पाँच पदों की वन्दना (गद्य)	.... १३२
४४. अनन्त चौबीसी	... १३५
४५. समुच्चय जीवों से क्षमापना	.... १३५
४६. क्षमापनासूत्र	.... १३६
४७. आवस्सहि इच्छाकारेणं	... १३८
४८. ध्यान के विषय में	.... १३८
४९. सामायिक आदि दृह आवश्यक	.... १३८
: परिशिष्ट :	.... १३९

# सामायिक-सूत्र



## सामायिक की परिभाषा

सामाड्यं नाम—

“सावज्ज—जोग—परिवज्जणं,  
निरवज्ज—जोग—पडिसेवणं च ।”

सावद्ययोगों का त्याग करना, और निरवद्ययोगों में प्रवृत्ति करना ही सामायिक है ।

: १ :

## नमस्कार-सूत्र

मूल :

नमो अरिहंताणं,

नमो सिद्धाणं,

नमो आयरियाणं,

नमो उवज्झायाणं,

नमो लोए सव्व-साहूणां ।

एसो पंच नमोक्कारो,

सव्व-पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसि ।

पढमं हवइ मंगलं ॥

अर्थ :

नमस्कार हो अरिहंतों को,

नमस्कार हो सिद्धों को,

नमस्कार हो आचार्यों को,

नमस्कार हो उवाध्यायों को,

नमस्कार हो लोक में सब साधुओं को !

यह पाँचोंको किया हुआ नमस्कार,

सब पापों का सर्वथा नाश करने वाला है,

और संसार के सभी मङ्गलों में,

प्रथम मुख [भाव] मङ्गल है ।

## व्याख्या

जैन-परम्परा में नमस्कारमन्त्र का बड़ा ही गौरव पूर्ण स्थान है। इसका दूसरा नाम नवकारमन्त्र भी है। इसको पंचपरमेष्ठी मंत्र भी कहा जाता है। जिस व्यक्ति के मन में सदा नवकारमन्त्र के उदात्त भाव का चिन्तन चलता रहता है, संसार में उसका अहित कौन कर सकता है? इतिहास साक्षी है कि—इस महान् मन्त्र के स्मरण से शूली का सुन्दर सिंहासन बन गया है, और भयङ्कर विषधरसर्प फूल-माला में परिणत हो गया है। नवकार इह लोक में तथा पर-लोक में सर्वत्र सर्व सुखों का मूल है।

नवकारमन्त्र मंगलरूप है। संसार में जितने भी मंगल हैं, यह उन सभी मंगलों में सर्व-श्रेष्ठ मंगल है। क्योंकि यह द्रव्य मंगल नहीं, भाव-मंगल है। द्रव्यमंगल दधि-अक्षत आदि कभी अमंगल भी बन जाते हैं, किन्तु नवकारमन्त्र भावमंगल होने से कभी अमंगल नहीं होता। भाव-मंगल ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य आदि के रूप में अनेक प्रकार का होता है।

नवकारमन्त्र में व्यक्ति-पूजा नहीं, गुण-पूजा का उदारभाव है। इस में जिन महान् आत्माओं के गुणों का स्मरण किया गया है, वे दो रूपों में हैं—देव और गुरु।

संसार-बन्धन के बीज-भूत—रागद्वेष का क्षय करने वाले तथा संसारी आत्माओं को भव-दुःखों से मुक्त कराने वाले अरिहंत भगवान् देव हैं।

आठ कर्मों से मुक्ति पाने वाले भव-बन्धनों से सदा के लिए सर्वथा विमुक्त सिद्ध भगवान् देव हैं।

स्वयं पवित्र आचार का पालन करने वाले, एवं दूसरों से भी आचार का पालन करवाने वाले आचार्य गुरु हैं।

द्वादशांगी जिन-वाणी के रहस्य के ज्ञाता, विमलज्ञान का दान करने वाले और मिथ्यात्व के अन्धकार को सम्यग्ज्ञान के प्रकाश से दूर करने वाले उपाध्याय गुरु हैं।

पांच महाव्रतों के पालन करने वाले, पाँच समिति और तीन गुप्ति के धारण करने वाले, मोक्षमार्ग के साधक साधु हैं ।

उक्त पाँच पदों को भाव-पूर्वक किया गया नमस्कार, सब पापों का नाशक है । संसार के समस्त मंगलों में, यह नमस्काररूप मंगल, भाव मंगल होने के कारण, सबसे श्रेष्ठ और सब से ज्येष्ठ मंगल है ।

: २ :

## गुरु-वन्दनसूत्र

मूल :

तिक्खुत्तो

आयाहिणं पयाहिणं करेमि,

वंदामि, नमंसांमि,

सक्कारेमि सम्माणेमि,

कल्लाणं, मंगलं,

देवयं, चेह्यं,

पज्जुवासामि,

मत्थएण वंदामि ।

अर्थ :

तीन बार

दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करता हूँ,

वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ,

सत्कार करता हूँ, सम्मान करता हूँ,

आप कल्याणरूप हो, मंगल-रूप हो,

देवता-स्वरूप हो, ज्ञान-स्वरूप हो,

मैं आपकी पर्युपासना = सेवा करता हूँ,  
मस्तक झुका कर वन्दना करता हूँ ।

**व्याख्या :**

अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में, गुरु का पद सब से ऊँचा है । कोई दूसरा पद इसकी समानता नहीं कर सकता । गुरु जीवन-मौका का नाविक है । संसार के काम, क्रोध एवं लोभ आदि भयंकर आवर्तों में से वह हमको सकुशल पार ले जाता है । भारतीय-संस्कृति की अध्यात्म-साधना में, इसी कारण से गुरु को **Supreme Power** कहा गया है ।

'गुरु' शब्द में दो अक्षर है—'गु' और 'रु' । 'गु' का अर्थ है—अन्धकार तथा 'रु' का अर्थ है—नाशक । गुरु का अर्थ हुआ—अन्धकार का नाश करने वाला । शिष्य के मन में रहे अज्ञान-अन्धकार को दूर करने वाला 'गुरु' कहलाता है ।

गुरु-वन्दन-सूत्र में गुरु को चन्दन किया गया है, और गुरु का स्वरूप बताया है ।

गुरु-मंगल-रूप है, देव-रूप है, ज्ञान-रूप है—अतः मैं विनम्रभाव से उसके चरणों में वन्दन एवं नमस्कार करता हूँ ।

: ३ :

### सम्यक्त्व-सूत्र

**मूल :** अरिहंतो मह देवो,  
जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।  
जिण-पणत्तं तर्चा,  
इअ सम्मत्तं, मए गहियं ॥

अर्थ : अरिहंत भगवान् मेरे देव हैं,  
यावज्जीवन श्रेष्ठ साधु मेरे गुरु हैं,  
जिन-प्ररूपित अहिंसा आदि तत्त्व मेरा धर्म है,  
यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया ।

व्याख्या :

यह 'सम्यक्त्व-सूत्र' है । सम्यक्त्व अध्यात्म-जीवन की प्रथम भूमिका है । आगे चल कर श्रावक आदि की भूमिकाओं में जो कुछ भी त्याग-वैराग्य, जप-तप तथा व्रत-नियम आदि साधनाएं की जाती हैं, उन सब की बुनियाद सम्यक्त्व को कहा गया है । यदि मूल में सम्यक्त्व नहीं है, तो अन्य सब तप-जप आदि क्रियाएँ केवल अज्ञान-कण्ट ही मानी जाती है, धर्म नहीं । क्योंकि वे संसार की वृद्धि करती हैं, संसार का क्षय नहीं करतीं । सम्यक्त्व के बिना होने वाला व्यावहारिक चारित्र, चाहे वह थोड़ा है, या बहुत, वस्तुतः कुछ है ही नहीं ।

सम्यक्त्व का सीधा-सादा अर्थ किया जाय तो विवेकदृष्टि होता है । सत्य और असत्य का मौलिक विवेक ही जीवन को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता है ।

परस्तुत सूत्र में व्यवहार-सम्यक्त्व का वर्णन किया गया है । यहाँ बताया गया है, कि किसको देव समझना, किसको गुरु समझना और किसको धर्म समझना ? साधक प्रतिज्ञा करता है—

राग-द्वेष विजेता अरिहंत मेरे देव हैं, पञ्च-महाव्रतधारी साधु मेरेगुरु हैं और जिन-भाषित दयामय आदि सच्चा धर्म मेरा धर्म है ।

परन्तु निश्चय-सम्यक्त्व तत्त्व-रूपि रूप होता है । जीवादि ज्ञेय को जानने की, संवर-निर्जरा आदि उपादेय को ग्रहण करने की और हिंसा, असत्य आदि हेय को छोड़ने को जो अभिरुचि-विशेष होती है, वह निश्चय-सम्यक्त्व है ।



साधना का मूल सम्यक्त्व है । इसके बिना किसी भी प्रकार की साधना सच्ची नहीं हो सकती । अतः सामायिक की साधना से पूर्व सम्यक्त्व की शुद्धि आवश्यक है ।

: ४ :

### गुरु-गुण-स्मरण-सूत्र

मूल : पञ्चिन्द्रिय-संवरणो,  
 तह नवविह-बंभचेर-गुप्ति-धरो  
 चउविह-कसाय-मुक्को,  
 इअ अट्टारस-गुणोहिं संजुत्तो ॥  
 पंच-महव्वय-जुत्तो,  
 पंच-विहायार-पालण-समत्थो ।  
 पंच-समिओ-तिगुत्तो,  
 छत्तीस-गुणो गुरु मज्झ ॥

अर्थ : पाँच इन्द्रियों के विषय को रोकने वाले,  
 तथा ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों को धारण करने वाले,  
 चार प्रकार के कषायों से मुक्त,  
 उक्त अठारह गुणों से संयुक्त,  
 पाँच महाव्रतों से युक्त,  
 पाँच प्रकार का आचार पालने में समर्थ,  
 पाँच समिति और तीन गुप्ति वाले,  
 इस प्रकार छत्तीस गुणों वाले मेरे गुरु हैं ।

व्याख्या :

यह गुरु-गुण स्मरण-सूत्र है । इसमें गुरु की महिमा का गुण-गान किया गया है । प्रत्येक साधक को गुरु के प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति का भाव रखना चाहिए । क्योंकि साधक पर सद्गुरु का इतना विशाल ऋण है, कि उसका कभी बदला चुकाया नहीं जा सकता । गुरु की महत्ता अपार है । अतः प्रत्येक धर्म-साधना के प्रारम्भ में सद्गुरु को श्रद्धा-भक्ति के साथ अभिवन्दन करना चाहिए ।

सामायिक की साधना से पूर्व, सामायिक की साधना के मार्ग का बोध कराने वाले गुरु का स्मरण आवश्यक है । अतः प्रस्तुत सूत्र में गुरु का स्मरण किया गया है; गुरु का स्वरूप बताया गया है, गुरु के गुणों का परिचय दिया गया है ।

छत्तीस गुणों के धारक पवित्र आत्मा को ही गुरु कहा गया है ।

: ५ :

## आलोचना-सूत्र

**मूल :** इच्छाकारेण संदिसह भगवं !

इरियावहियं, पडिक्कमामि ? इच्छं ?

इच्छामि पडिक्कमिउं, इरियावहियाए, विराह-  
णाए । गमणागमणे-पाणक्कमणे, वीयक्कमणे,  
हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मड्डी-  
मक्कडासंताणा-संकमणे ।

जे मे जीवा विराहिया,

एगिंदिया, बेइंदिया-तेइंदिया,

चउरिंदिया, पंचिंदिया !  
 अभिहया, वत्तिया, लेसिया,  
 संघाइया, संघट्टिया, परियाविया,  
 किलामिया, उद्विया,  
 ठाणाओ ठाणं संकामिया,  
 जीवियाओ ववरोविया,  
 तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : हे भगवन् ! इच्छा-पूर्वक आज्ञा दोजिये, ताकि मैं ऐया-  
 पथिकी अर्थात् गमनागमन की क्रिया का प्रतिक्रमण  
 करूँ [गुरु की ओर से आज्ञा मिल जाने पर, अथवा  
 गुरु न हों, तो अपने संकल्प से ही आज्ञा पा कर श्रावक  
 को कहना चाहिए] आज्ञा स्वीकार है ।

आते जाते मार्ग में अथवा श्रावक का धर्माचार पालने  
 में, जो कुछ भी [जीवों की] विराधना हो गई हो, तो  
 उस पाप से प्रतिक्रमण चाहता है = निवृत्त होना  
 चाहता है ।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन करते हुए  
 किसी जीव को पैरों से नीचे दबाने से, इसी प्रकार  
 सचित्त बीज, हरितकाय = वनस्पति, अवश्याय = आकाश  
 से पड़ने वाला ओस , उत्तिग = चींटियों के बिल,  
 पनग = पाँच वर्ण की शैवाल— काई, दक = सचित्त  
 जल, सचित्त मिट्टी और मकड़ी के जालों को  
 दबाने से ।

[किन जीवों की विराधना की हो ?]

इन जीवों की मैंने विराधना की हो; जैसे की एकेन्द्रिय = एक स्पर्श इन्द्रिय वाले पृथिवी आदि पाँच स्थावर; द्वीन्द्रिय = दो स्पर्शन और रसन इन्द्रिय वाले कीड़े आदि; त्रीन्द्रिय = तीन स्पर्शन, रसन, घ्राण इन्द्रिय वाले जू कीड़ी आदि; चतुरिन्द्रिय = चार स्पर्शन, रसन, घ्राण चक्षु इन्द्रिय वाले मक्खी, मच्छर आदि; पञ्चेन्द्रिय = पाँच स्पर्शन-त्वचा, रसन = जिह्वा घ्राण = नाक, चक्षु = आँख, श्रोत्र = कान इन्द्रिय वाले सर्प मेंढक आदि ।

[किस तरह की पीडा दी हो ?]

सामने आते पैरों से मसले हों, धूल या कीचड़ आदि से ढंके हों, भूमि पर रगड़े हों, एक दूसरे से आपस में टकराए हों, छू कर पीडित किये हों, परित्यापित = दुःखित किये हों, मरण-तुल्य किये हों, भयभीत किये हों, एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदले हों, कि बहुना, प्राणरहित भी किये हों, तो मेरा वह सब पाप मिथ्या निष्फल हो ।

व्याख्या :

जैनधर्म में विवेक का बहुत महत्व है । प्रत्येक क्रिया में विवेक रखना, यतन करना श्रमण, एवं श्रावक दोनों साधको के लिए आवश्यक है । जो भी काम करना हो, सोच-विचार कर, देख-भाल कर, यतना के साथ करना चाहिए । पाप का मूल प्रमाद है, अविवेक है । साधक के जीवन में विवेक के प्रकाश का वड़ा महत्त्व है ।

‘आलोचना-सूत्र’ विवेक और यतना के संकल्पों का जीता-जागता

चित्र है। आवश्यक कार्य के लिए कहीं इधर-उधर आना-जाना आदि कार्य हुआ हो, तब यतना का ध्यान रखते हुए भी यदि कहीं प्रमाद-वश किसी जीव को पीडा पहुँची हो, तो उसके लिये इस पाठ में पश्चात्ताप किया गया है। जैनधर्म का साधक जरा-जरा-सी भूलों के लिये भी पश्चात्ताप करता है और हृदय को निष्पाप बनाने का प्रयत्न निरन्तर करता रहता है।

प्रस्तुत पाठ के द्वारा आत्म-विशुद्धि का मार्ग बताया गया है। जिस प्रकार कपड़े में लगा हुआ मैल खार और साबुन से साफ किया जाता है, उसी प्रकार गमनागमनादि क्रिया करते समय अशुभ योग आदि के कारण अपने विशुद्ध समय-धर्म में किसी भी प्रकार का कुछ भी पाप-मल-लगा हो, तो वह सब पाप प्रस्तुत पाठ में चिन्तन से साफ किया जाता है। आलोचना के द्वारा अपने संयम-धर्म को पुनः स्वच्छ, शुद्ध और साफ बनाया जाता है।

: ६ :

## उत्तरीकरण सूत्र

मूलः तस्स उत्तरीकरणेणं,  
 पायच्छिन्ना-करणेणं,  
 विसोहि-करणेणं,  
 विसल्ली-करणेणं  
 पावाणं कम्माणं निग्घायणाट्ठाए,  
 ठामि काउस्सगं,

अर्थ : उस [व्रत या आत्मा की] विशेष शुद्धि करने के लिए,  
 [गुरुदेव के समीप] प्रायश्चित्त करने के लिए,

[आत्मा की] विशेष निर्मलता के लिए,  
 [आत्मा को] शल्य यानि माया से रहित करने के लिए  
 पाप-कर्मों का मूलोच्छेद = सर्वनाश करने के लिए,  
 मैं कायोत्सर्ग करता हूँ = शरीर की क्रिया का त्याग  
 करता हूँ ।

व्याख्या :

यह उत्तरीकरण-सूत्र है । इस में कायोत्सर्ग का संकल्प किया जाता है । जो वस्तु एक बार मलिन हो जाती है, वह एक बार के प्रयत्न से ही शुद्ध नहीं हो जाती । उसकी विशुद्धि के लिए बार-बार प्रयत्न करना होता है ।

यह कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा का सूत्र है । कायोत्सर्ग में दो शब्द है— काय और उत्सर्ग । काय अर्थात् शरीर का, उत्सर्ग अर्थात्-त्याग । अभि-प्राय यह हैं, कि कायोत्सर्ग करते समय साधक अपने शरीर की ममता छोड़ कर आत्म-भाव में प्रवेश करता है । कायोत्सर्ग में शरीर की चञ्चलता के साथ-साथ मन और वचन की चञ्चलता का भी त्याग होना चाहिए ।

स्वीकृति व्रत की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त आवश्यक है । वह भाव-शुद्धि से होता है । वह भाव-शुद्धि शल्य के त्याग बिना नहीं हो सकती । और शल्य-त्याग के लिए ही कायोत्सर्ग किया जाता है ।

: ७ :

## आगार-सूत्र

मूल : अन्नत्थ ऊससिएणं,  
 नीससिएणं,  
 खासिएणं, छीएणं जंभाइएणं, उड्डुएणं,

वाय-निस्रग्गेयां,  
 भमलीए, पित्तमुच्छ्राए ।  
 सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं,  
 सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं  
 सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं,  
 एवमाइएहिं आगरेहिं,  
 अभग्गो, अविराहिओ,  
 हुज्ज मे काउस्सग्गो ।  
 जाव अरिहंतायां, भगवंतायां,  
 नमोक्कारेयां, न पारेमि;  
 ताव कायं  
 ठाणेयां, मोणेयां, भाणेयां,  
 अप्पायां वोसिरामि ।

अर्थ : [कायोत्सर्ग में काय के व्यापारों का परित्याग करता हूँ ।  
 परन्तु जो शारीरिक क्रियाएँ स्वाभावतः हरकत में आ  
 जाती हैं] उनको छोड़कर ।

[कौन-सी क्रियाओं का आगार=छूट है ?]

उच्छ्वास=ऊँचे श्वास से, निःश्वास=नीचे श्वास से,  
 खांसी से, छींक से, उवासी से, डकार से, वातनिसर्ग=  
 अपाज वायु से, भ्रान्ति=चक्कर से, पित्त-मूर्च्छा=पित्त  
 के प्रकोप से होने वाली मूर्च्छा से

सूक्ष्मरूप से अंगों के संचार=हिलने से;

सूक्ष्मरूप से थूक या कफ के निकलने से;

सूक्ष्म रूप से दृष्टि = नेत्र के पड़क जाने से;  
[पूर्वोक्त आगारों यानि छूटों के सिवा अग्नि आदि का  
उपद्रव होने पर भी जगह बदलने की छूट है, अतः]  
इत्यादि और भी आगारों से मेरा कायोत्सर्ग अखण्डित  
तथा अविराधित होवे ।

[कायोत्सर्ग कब तक है ?]

जब तक अरिहन्त भगवान् को प्रकटरूप से नमस्कार  
करके अर्थात् 'नमो अरिहताणं' पढ़ कर कायोत्सर्ग न  
पार लूँ ।

तब तक एक स्थान पर शरीर से स्थिर हो कर,  
वचन से मौन रख कर मन से धर्म-ध्यान में  
एकाग्रता ला कर, अपने आप को पाप-व्यापारों से  
बोसराता हूँ = अलग करता हूँ

व्याख्या :

यह आगार-सूत्र है । साधक- जीवन में निवृत्ति आवश्यक है, किन्तु  
उसकी भी एक सीमा है । कायोत्सर्ग में शरीर की क्रियाओं को रोकने  
का प्रयत्न है, फिर भी शरीर के कुछ व्यापार ऐसे हैं, जो बराबर होते  
रहते हैं । उनको किसी भी प्रकार से बन्द नहीं किया जा सकता । यदि  
हठात् बन्द करने का प्रयत्न होता है, तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि  
की सम्भावना अधिक रहती है ।

अतः कायोत्सर्ग से पहले यदि उन व्यापारों के सम्बन्ध में छूट न  
रखी जाय, तो फिर कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा का भङ्ग होता है । इसी बात  
को ध्यान में रख कर सूत्रकार ने प्रस्तुत आगार-सूत्र का निर्माण किया है ।  
कायोत्सर्ग से पूर्व ही कुछ छूट रख लेने के कारण प्रतिज्ञा-भङ्ग का दोष  
नहीं लगता । इसी तथ्य को समझने के लिए आगार-सूत्र है ।



: ८ :

## चतुर्विंशतिस्तव-सूत्र

मूल :           लोगस्य उज्जोयगरे,  
                   धम्म-तित्थयरे जिणे ।  
 अरिहंते कित्तइस्सं,  
                   चउवीसं पि केवली ॥१॥  
 उसभमजियं च वंदे,  
                   संभवमभिणांदणं च सुभइं च ।  
 पउमप्पहं सुपासं,  
                   जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥  
 सुविहिं च पुप्फदंतं,  
                   सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च ।  
 विमलनणांतं च जिणां,  
                   धम्मं सत्तिं च वंदामि ॥३॥  
 कुंथुं अर च मल्लिं,  
                   वंदे मुणिसुव्वयं नमि-जिणां च ।  
 वंदामि रिट्ठनेमिं,  
                   पासं तह वद्धमार्णां च ॥४॥  
 एवं मए अभिथुआ,  
                   विहूय-रयमला, पहीणाजरमरणा ।

चउवीसं पि जिण-वरा,  
 तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥  
 क्कित्तिय-वंदिय-महिया,  
 जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।  
 आरूग्ग-बोहिलाभं,  
 समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥  
 चंदेसु निम्मलयरा,  
 आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।  
 सागर-वर-गंभीरा,  
 सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

अर्थ : लोक=संसार में धर्म का उद्योत=प्रकाश करने वाले धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, [रागद्वेष के] जीतने वाले, [कर्मरूपी] शत्रुओं के नाश करने वाले, केवल ज्ञानी चौबीस तीर्थङ्करों का में कीर्तन=स्तवन करूँगा ॥१॥

ऋषभदेव तथा अजितनाथ को वन्दना करता हूँ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमितनाथ, पद्मप्रभ, सुपाश्वर्-नाथ, और रागद्वेष के जीतने वाले चन्द्रप्रभ भगवान् को भी वन्दना करता हूँ ॥२॥

सुविघ्ननाथ=पुष्पदन्त, शोतल, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, रागद्वेष के विजेता अनन्तनाथ, धर्मनाथ, तथैव शान्तिनाथ भगवान् को वन्दना करता हूँ ॥३॥

कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, एवं राग-द्वेष के विजेता नमिनाथ को वन्दना करता है । इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान स्वामी को भी वन्दना करता है ॥४॥

जिनकी मैंने इस भाँति स्तुति की है, जिन्होंने कर्मरूपी रज तथा मल को दूर कर दिया है, जो जरा-मरण से सर्वथा रहित हो गए हैं, वे राग-द्वेष के जीतने वाले जिनवर चौबीस तीर्थङ्कर मुझ पर प्रसन्न हों ॥५॥

जिनकी इन्द्रादि देवों ने स्तुति की है, वन्दना की है, उपासना की है, और जो अखिल संसार में सब से उत्तम हैं, वे सिद्ध भगवान् मुझे आरोग्य, सम्यग्बोधि, तथा उत्तम समाधि प्रदान करें ॥६॥

जो अनेक चन्द्रमाओं से भी अधिक निर्मल हैं, जो अनेक सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले हैं, जो महासागर के समान गम्भीर हैं, वे सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि अर्थात् मुक्ति प्रदान करें ॥७॥

व्याख्या :

यह चतुर्विंशति-स्तव-सूत्र है । भक्ति-साहित्य में यह एक अनुठी रचना है । इस के प्रत्येक शब्द में भक्तिभाव का अखण्ड स्रोत्र प्रवाहित हो रहा है ।

दिव्यपुरुषों का स्मरण मन को पवित्र बनाता है । दिव्य आत्मा के ध्यान से मन भी दिव्य बन जाता है ।

प्रस्तुत पाठ में भगवान् ऋषभदेव से ले कर भगवान् महावीर तक चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है, वे हमारे इष्टदेव हैं ; अहिंसा और सत्य का मार्ग बताने वाले हैं, वे हमारे परम देव हैं । उनका स्मरण

करना, उनका उत्कीर्तन करना और उनका जप करना, हम सबका ही कर्तव्य है ।

भगवान् का ध्यान करने से, भगवान् के नाम का जप करने से और उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने से जीवन दिव्य बनता है ।

: ६ :

## सामायिक सूत्र

मूल :           करेमि भंते ! समाइयं.  
                   सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ।  
                   जाव-नियमं पज्जुवासामि,  
                   दुविहं तिविहेणां,  
                   मणोणां-वायाए, काएणां,  
                   न करेमि, न कारवेमि,  
                   तस्स भंते !  
                   पडिक्ककामि, निंदामि, गरिहामि,  
                   अप्पाणां वोसिरामि !

अर्थ : हे भगवन् ! मैं सामायिक (ग्रहण) करता हूँ,  
 समस्त पाप-क्रियाओं का परित्याग करता हूँ ।

१. जावनियमं के अगे जितनी सामायिक करनी हों, उतने ही मुहूर्त कहने चाहिए, जैसे— जावनियम मुहूर्त एक, मूहूर्त दो आदि ।

जब तक मैं नियम से स्थित रह कर पर्युपासना करूँ, तब तक दो करण [करना, कराना, चाहिए।] और तीन योग से अर्थात् मन, वचन, और काय से (पापकर्म) न स्वयं करूँगा और न दूसरों से कराऊँगा।

[जो पाप-कर्म पहले हो गए हैं, उनका] हे भगवान् ! प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरुदेव ! आप की साक्षी से गर्हा करता हूँ।

अन्त में, मैं अपनी अन्तरात्मा को पाप-व्यापार से बोसराता हूँ = अलग करता हूँ।

व्याख्या :

यह प्रतिज्ञा-सूत्र है। इसमें साधक सामयिक करने की प्रतिज्ञा करता है।

सामायिक एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम है। व्यायाम भले ही थोड़ी देर के लिए हो, दो घड़ी के लिए ही हो, परन्तु उसका प्रभाव और लाभ स्थायी होता है।

सामायिक में दो घड़ी बैठ कर आप अपना आदर्श स्थिर करते हैं। सामायिक बाह्यभाव से हट कर स्वभाव में रमण करने की कला है। सम-भाव की साधना ही सामायिक है।

प्रस्तुत पाठ में सामायिक का स्वरूप बताया गया है। जब तक जीवन में सच्ची सामायिक नहीं आती, तब तक जीवन पावन नहीं बन सकता। सामायिक की साधना ही सब से मुख्य साधना है।

: १० :

## प्रणिपात-सूत्र

मूल :

नमोत्थुणं !

अरिहंताणां, भगवंताणां, आइगराणां,

तित्थयराणां, सयं-संबुद्धाणां,

पुरिसुत्तमाणां, पुरिस-सीहाणां,

पुरिस-वर-पुण्डरियाणां, पुरिस-वर-गंधहत्थीणां,

लोगुत्तमाणां, लोग-नाहाणां, लोग-हियाणां,

लोगपईवाणां, लोग-पज्जोयगराणां,

अभयदयाणां, चक्खुदयाणां मग्गदयाणां;

सरणदयाणां, जीवदयाणां, बोहिदयाणां;

धम्मदयाणां धम्मदेसयाणां, धम्मनायगाणां

धम्मसारहीणां, धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टीणां;

दीव-ताण-सरण-गइ-पइट्ठोणां,

अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणां, वियड्ढुअमाणां

जिणाणां जावयाणां तिण्णाणां, तारयाणां

बुद्धाणां, बोहयाणां, मुत्ताणां, मोयगाणां;

सव्वन्नुणां, सव्व-दरिसीणां,

सिवमयलमरुयमर्णतमक्खयमव्वावाह—,  
 मपुणरावित्ति-सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं  
 संपत्ताणं,  
 नमो जिण्णाणं जिय-भयाणं

अर्थ : नमस्कार ही अरिहंत भगवान् को, [अरिहंत भगवान् कैसे हैं ?] धर्म की आदि करने वाले हैं, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले हैं, अपने आप ही प्रबुद्ध हुए हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, पुरुषों में सिंह हैं, पुरुषों में पुण्डरीक कमल हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती हैं, लोक में उत्तम हैं, लोक के नाथ हैं, लोक के हित-कर्ता हैं, लोक में दीपक के समान हैं, लोक में धर्म का उद्घोष करने वाले हैं।

अभयदान देने वाले हैं, ज्ञान-नेत्र के देने वाले हैं, धर्ममार्ग के देने वाले अर्थात् बताने वाले हैं, शरण के देने वाले हैं, संयमजीवन के देने वाले हैं बोधि = सम्यक्त्व के देने वाले हैं।

धर्म के दाता हैं, धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नेता हैं, धर्म-रथ के सारथी हैं, चार गति के अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्मचक्रवर्ती हैं,

संसारसमुद्र में द्वीप = टापू हैं, शरण हैं, गति हैं, प्रतिष्ठा है, अप्रतिहत अर्थात् किसी भी आवरण से अवरुद्ध न हो सकें—ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल-दर्शन के

- 
१. अरिहंत की स्तुति में 'ठाणं संपत्ताणं के स्थान पर 'ठाणं संपाविउं-कामाणं' कहना चाहिए।

धारण करने वाले हैं, मोहनीयप्रमुख घातिकर्म से तथा प्रमाद से रहित हैं,

स्वयं राग-द्वेष के जीतने वाले हैं, दूसरों को जिताने वाले हैं, स्वयं संसार-सागर से तर गये हैं, दूसरों को तारने वाले हैं, स्वयं बोध पाए हुए हैं, दूसरों को बोध देने वाले हैं, स्वयं कर्म से मुक्त हुए हैं, दूसरों को मुक्त करने वाले हैं,

तीन काल और तीन लोक के सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थों के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ हैं, और इसी प्रकार सबके द्रष्टा होने से सर्वदर्शी हैं,

शिव=कल्याणरूप, अचल=स्थिर, अरुज=रोग से रहित, अनन्त=अन्तरहित, अक्षय=क्षयरहित, अव्याबाध=बाधा=पीड़ा से रहित, पुनरागमन से भी रहित 'सिद्धि-गति' नामक स्थान-विशेष अर्थात् अवस्था-विशेष को प्राप्त कर चुके हैं, [अरिहन्त के लिए 'ठाणं सपाबिउं-कामाणं' आता है, उसका अर्थ है—सिद्धि-गति नामक स्थान को भविष्य में पाने वाले हैं]

नमस्कार हो, भय के जीतने वाले, रागद्वेष के जीतने वाले जिन भगवानों को !

व्याख्या :

यह प्रणिपात-सूत्र है। इसमें अरिहन्त भगवान् की स्तुति की गई है। इस पाठ को शक्रस्तव भी कहते हैं। इन्द्र ने भगवान् की इसी पाठ से स्तुति की थी। अतः स्तुति-साहित्य में यह महत्त्वपूर्ण पाठ है।

'नमोऽथुणं' के पाठ में तीर्थङ्कर भगवान् के विश्व-हितकर निर्मल गुणों का अत्यन्त सुन्दर परिचय दिया गया है।

अरिहन्त भगवान् लोक में उत्तम हैं। लोक के नाथ हैं लोक में दीपक हैं, लोक में ज्ञान का प्रकाश करने वाले हैं।



अरिहन्त भगवान् धर्म के दाता हैं, धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नेता हैं, धर्म के सारथी हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत<sup>१</sup> पाठ में अनेक उपमाओं द्वारा भगवान् की स्तुति की गई है ।

: ११ :

## समाप्ति-सूत्र

**मूल :** एयस्स नवमस्स सामाइय-वयस्स,  
 पंच अइयारा, जाणियच्चा, न समायरियच्चा,  
 तं जहा :—  
 मणदुप्पणिहाणे,  
 वयदुप्पणिहाणे,  
 कायदुप्पणिहाणे,  
 सामाइयस्स सइ अकरणया,  
 सामाइयस्स अणवट्टियस्स करणया,  
 तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।  
 सामइयं सभ्मं काएण,  
 न फासियं, न पालियं,  
 न तीरियं, न किट्टियं,  
 न सोहियं, न आराहियं,  
 आणाए अणुपालियं न भवइ,  
 तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

१. प्रणिपात-सूत्र आदि सामायिक के पाठों की विस्तृत व्याख्या एक विवेचन उपाध्याय श्रद्धेय अमरचन्द्रजी म० कृत सामायिक-सूत्र भाष्य में देखिए ।

अर्थ : प्रस्तुत नौवें सामायिक व्रत के पाँच अतिचार = दोषविशेष हैं, जो मात्र जानने योग्य है, आचरण करने योग्य नहीं ।

वे पाँच इस प्रकार हैं—

मन को कुमार्ग में लगाना,

वचन को कुमार्ग में लगाना,

काय को कुमार्ग में लगाना,

सामायिक की ठोक स्मृति न रखना,

सामायिक को अव्यवस्थित ढंग से करना,

उक्त दोषों के कारण मुझे जो भी दुष्कृत = पाप लगा हो,

वह सब [आलोचना के द्वारा] मिथ्या = निष्फल होवे !

सामायिकव्रत सम्यक् रूप से, काया से,

न स्पर्शा हो, न पाला हो,

पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो,

बुद्ध न किया हो, आराधन न किया हो,

वीतराग की आज्ञानुसार पालन न हुआ हो, तो

तत्-सम्बन्धी मेरा सब पाप निष्फल हो ।

व्याख्या :

यह समाप्तिसूत्र है । साधक अपनी साधना में सावधानी रखता है, फिर भी उससे भूलों का होना सहज है । पर भूल का संशोधन कर लेना उसका अपना कर्तव्य है ।

प्रस्तुत पाठ में सामायिक व्रत के पाँच अतिचार बताए गए हैं, जिनको जान लेना चाहिए, पर उनका आचरण नहीं करना चाहिए ।

सामायिकव्रत का सम्यक् रूप से ग्रहण चाहिए, सम्यक् रूप से स्पर्शन चाहिए, सम्यक् रूप से पालन चाहिए, तभी उसकी साधना सम्यक् साधना हो सकती है ।

## सामायिक का लक्षण

समता सर्व-भूतेषु,

संयमः शुभ-भावना ।

आर्त-रोद्र-परित्यागः,

तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥

सब जीवों पर सम-भाव रखना, पाँच इन्द्रियों का संयम, शुभ-भावना, आर्त-रोद्र ध्यान का परित्याग करना—सामायिक व्रत है ।

सामायिक-विशुद्धात्मा,

सर्वथा घाति-कर्मणः ।

क्षयात् केवलमाप्नोति

लोकालोक-प्रकाशकम् ॥

सामायिक की साधना से विशुद्ध हो कर, यह आत्मा घाति-कर्मों का पूर्ण क्षय करके लोक-अलोकव्यापी केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।

---

टिप्पण — प्रस्तुत पुस्तक में सामायिक-सूत्र के सभी पाठों की व्याख्या संक्षेप में दी गई है । विस्तृत विवेचन, विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिए, उपाध्याय श्रद्धेय अमरचन्द्रजी म० कृत सभाष्य सामायिक-सूत्र।

# सामायिक का स्वरूप

जो समोसव्वभूएसु  
तसेसु थावरेसु य ।  
तस्स सामाइयं होइ,  
इइ केवलि-भासियं ॥

—आचार्य भद्रबाहु

जो साधक व्रत और स्थावर—समग्र जीवों पर सम-भाव रखता है,  
उसकी सामायिक, शुद्ध सामायिक है । ऐसा केवली भगवान् ने कहा है ।

# सामायिक-सूत्र

प रि शि ष्ट

# परिशिष्ट

## सामायिक करने की विधि

शान्त तथा एकान्त स्थान में भूमि का अच्छी तरह प्रमार्जन कर, श्वेत तथा शुद्ध आसन लेकर, गृहस्थ-वेष पगड़ी, पजामा, कोट आदि उतार कर शुद्ध वस्त्र धोती एवं उत्तरासन धारण कर मुख पर मुख-वस्त्रिका बाँध कर, पूर्व तथा उत्तर की ओर मुख करके बैठ कर या खड़े हो कर सामायिक-सूत्र के पाठों को इस प्रकार से बोले—

नवकार तीन बार,

सम्यक्त्वसूत्र = अरिहंती, तीन बार,

गुरु-गुण-स्मरणसूत्र = पंचिदिय, एकबार,

गुरु-वन्दन सूत्र = तिकखुत्तो तीन बार,

[वन्दन कर आलोचना की आज्ञा लेना]

आलोचनासूत्र = इरियावही, एक बार,

उत्तरीकरणसूत्र = तस्स उत्तरी, एक बार-

आगारसूत्र = अन्नत्थ, एक बार,

[पद्मासन आदि से बैठ कर या खड़े होकर] कायोत्सर्ग = ध्यान करना ।

[कायोत्सर्ग = ध्यान में] लोगस्स, एक बार,

नमो अरिहंताणं, पढ़ कर ध्यान खोलना,

गुरुवन्दनसूत्र = तिकखुत्तो तीन बार,

[गुरु से, वे न हों, तो भगवान् की साक्षी से सामायिक

की आज्ञा लेना]

१. इरियावही का ध्यान भी करते हैं ।

सामायिक प्रतिज्ञासूत्र = करेमि भंते, एक बार,  
 [दाहिना घुटना जमीन पर टेक कर, बाया घुटना खड़ा कर  
 उस पर अंजलि-बद्ध दोनों हाथ रख कर]  
 प्रणिपात सूत्र = नमोत्थुणं, दो बार पढ़े,  
 दो नमोत्थुणं में पहला सिद्धों का, दूसरा अरिहंतों का है।  
 अरिहंतों के नमोत्थुणं में 'ठाणं संपत्ताणं' के बदले 'ठाणं  
 संपाविउं कामाणं' पढ़ना चाहिए।  
 ४८ मिनट तक अर्थात् सामायिक के काल में स्वाध्याय,  
 धर्मचर्चा, एवं आत्म-ध्यान करना चाहिए।

## सामायिक पारने की विधि

गुरु-वन्दन-सूत्र = तिवखुत्तो तीन बार,  
 आलोचना-सूत्र = इरियावही, एक बार,  
 उत्तरीकरण सूत्र = तस्स उत्तरी, एक बार,  
 आगार-सूत्र = अन्नत्थ, एक बार,  
 [पद्मासन आदि से बैठ कर या खड़े हो कर कायोत्सर्ग करना]  
 कायोत्सर्ग में लोगस्स एक बार,  
 नमो अरिहंताणं पढ़ कर ध्यान खोलना,  
 प्रकटरूप से लोगस्स एक बार,  
 [दाहिना घुटना टेक कर बाया घुटना खड़ा कर, उस पर  
 अंजलि-बद्ध दोनों हाथ रख कर]  
 प्रणिपातसूत्र = नमोत्थुणं दो बार,  
 सामायिक-समाप्तिसूत्र = एयस्स० एक बार,  
 नवकार मन्त्र = नो बार।

## सामायिक के बत्तीस दोष

### मन के दश दोष

(१) अविवेक, (२) यश की इच्छा, (३) धन आदि का लाभ चाहना, (४) गर्व, (५) भय, (६) निदान = भोगप्राप्ति के लिए धर्म की बाजी लगा देना, (७) संशय = फल के प्रति सन्देह रखना, (८) रोष = क्रोध आदि कषाय करना, (९) अविनय और (१०) अबहुमान = भक्ति की भावना न रखना ।

### वचन के दश दोष

(१) कुवचन = गन्दे वचन बोलना, (२) सहसाकार = बिना विचारे यों ही ऊटपटांग बोलना, (३) असदारोपण = मिथ्या उपदेश देना या किसी पर झूठा कलंक लगाना, (४) निरपेक्ष = शास्त्र से विरुद्ध बोलना, (५) संक्षेप = सूत्रपाठ को शीघ्रता वश संक्षेप से कहना, (६) क्लेश = सामायिक में किसी से झगड़ा कर बैठना, (७) विकथा = राजा, देश, स्त्री और भोजन आदि की बातें करना, (८) हास्य = हँसी-मजाक करना, (९) अशुद्ध = सूत्र-पाठ को घटा बढ़ा कर या अशुद्ध बोलना,, (१०) मुण-मुण = कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट पढ़ना या बोलना ।

### काय के बारह दोष

(१) अयोग्य आसन से बैठना, (२) बार बार आसन बदलना, (३) इधर-उधर झाँकते रहना, (४) पाप के काम करना, (५) बिना कारण दीवार आदि का सहारा लेना, (६) बिना कारण पैर पसारना, (७) आलस्य के कारण



अंगड़ाई आदि लेना, (८) शरीर को मटकाना (९) शरीर का मूल उतारना, (१०) गृहस्थ के सीने-पिरोने आदि के काम करना, (११) नींदलेना, (१२) हाथ-पैर आदि दबवाना । सामायिक में उक्त ३२ दोषों का त्याग करना आवश्यक है ।

## सामायिक की शुद्धि

**द्रव्यशुद्धि** : सामायिक के लिए जो भी आसन, वस्त्र, रजोहरण या पूंजनी, माला, मुखवस्त्रिका, पुस्तिका आदि साधन हैं, वे सब शुद्ध एवं साफ होने चाहिये ।

**क्षेत्रशुद्धि** : क्षेत्र का अर्थ स्थान है । अतः जिस स्थान पर बैठने से चित्त में चंचलता आती हो, स्त्री-पुरुषों के अधिक यातायात के पवित्त विचार-धारा दूटती हो, विषय-विकार उत्पन्न करने वाले शब्द तथा दृश्य होते हों, किसी प्रकार के क्लेश की संभावना हो, ऐसे ऐसे स्थान पर सामायिक नहीं करनी चाहिये । सामायिक का स्थान एकान्त तथा शान्त ही ।

**कालशुद्धि** : सामायिक का काल ऐसा हो, जब कि गृहस्थी की झंझटे न सताएं, चित्त खिन्न न हो, दूसरों के मन में तथा अपने मन में शीघ्रता, घबराहट या अरुचि न हो । इसके लिए प्रातःकाल और सायंकाल का समय ठीक है । स्थिर-चित्त का साधक कभी भी कर सकता है ।

**भावशुद्धि** : भावशुद्धि से अभिप्राय है—मन, वचन और शरीर की शुद्धि । मन, वचन एवं शरीर की शुद्धि का अर्थ है—इनकी एकाग्रता । जब तक मन, वचन और शरीर की एकाग्रता न हो, चंचलता न रुके, तब तक बाह्य विधि-विधान जीवन में विकाश नहीं ला सकते ।

# श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र

---

उपक्रम

## प्रतिक्रमण की परिभाषा

स्वस्थानाद् यत् पर-स्थानं,  
प्रमादस्य वशाद् गतः ।  
तत्रैव क्रमणं भूयः ;  
प्रतिक्रमणमुच्यते ॥

प्रमाद-वश शुद्धपरिणतिरूप आत्म-भाव से गिर कर (हट कर) अशुद्धपरिणतिरूप पर भाव को प्राप्त करने के बाद, फिर से आत्म-भाव को प्राप्त करना, प्रतिक्रमण है ।

## उपक्रम सूत्र

मूल : आवस्सही,  
इच्छाकारेण संदिसह भगवं !  
देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि ।  
देवसिय-नाण-दंसण-  
चरित्ताऽचरित्त-तव-  
अइयार-चित्तणत्थं  
करेमि, काउसग्गं ।

अर्थ : अवश्यमेव (आवश्यक कार्य है)  
इच्छापूर्वक (प्रतिक्रमण करने की)  
आज्ञा दीजिए,  
हे भगवान !  
दिवस-सम्बन्धी प्रतिक्रमण करता हूँ ।  
दिवस सम्बन्धी ज्ञान और दर्शन,  
चारित्र-अचारित्र (संयमाऽसंयम),  
अनशन आदि द्वादशविध तप,  
(इस भांति स्वीकृत आचार) के दूषणों का,  
चिन्तन (स्मरण) करने के लिए,  
कायेत्तर्गं, (शरीर के ममत्वभाव का त्याग)  
करता हूँ ।

साधक गुरु के समक्ष उपस्थित हो कर कहता है—“भते ! आप आज्ञा प्रदान कीजिए, जिससे मैं दिवस-सम्बन्धी प्रतिक्रमण करके दिवस-सम्बन्धी ज्ञान, दर्शन, चारित्र्याचारित्र (देश चारित्र) और तप के अतिचारों का चिन्तन करने के लिए कायोत्सर्ग करूँ ।”

प्रस्तुत पाठ में यह कहा है, कि साधक को अपनी साधना में जागृत रहना चाहिए । ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप की साधना में भूल-चूक से जो अतिचार अर्थात् दोष लग जाते हैं, उनका एकाग्र-भाव से चिन्तन करना चाहिए, विचार करना चाहिए । संध्याकाल में दिन के अतिचारों का और प्रातःकाल में रात के अतिचारों का चिन्तन करना चाहिए ।

: २ :

## संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र

मूल : इच्छामि पडिक्कमिउं,  
 जो मे देवसिओ अइयारो कओ,  
 काइओ, वाइओ, माणसिओ,  
 उस्सुत्तो, उम्मग्गो,  
 अकप्पो, अकरणिज्जो,  
 दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ,  
 अणायारो,  
 अणिच्छियव्वो, असावग-पाउग्गो,  
 नाणे तह दंसणे, चरित्ताचरित्ते,

सुए, सामाइए,  
 तिएहं गुत्तीणं, चउएहं कसायाणं,  
 तिएहं गुणव्वयाणं,  
 चउएहं सिक्खावयाणं,  
 बारसविहस्स सावग-धम्मस्स  
 जं खंडियं, जं विराहियं,  
 तस्य मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : इच्छा करता हूँ, प्रतिक्रमण करने की,  
 जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किया हो,  
 काय का, वचन का, मन का,  
 उत्सूत्र (सूत्र के विरुद्ध) मार्ग के विरुद्ध (बीतराग  
 मार्ग के विपरीत)  
 कल्प (आचार) विरुद्ध, अकरणीय (जो करने योग्य  
 न हो) दुर्ध्यानरूप, दुश्चिन्तनरूप  
 अनाचाररूप,  
 अनिच्छितरूप, जो श्रावक के योग्य न हो,  
 ज्ञान में तथा दर्शन में, संयमासंयम में,  
 श्रुत (ज्ञान) में, सामायिक-व्रत में,  
 तीन गुण्णियों की, चार कषायों की  
 पांच अणुव्रतों की,  
 तीन गुण-व्रतों की,  
 चार शिक्षाव्रतों की,  
 (इस प्रकार) द्वादश प्रकार के श्रावकधर्म की,

जो खण्डना की हो, जो विराधना की हो,  
उसका, पाप मुक्त को मिथ्या हो ।

व्याख्या :

मनुष्य देव भी है, और राक्षस भी । वह सदाचार के मार्ग पर चले, तो अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है, और यदि वह दुराचार के कुमार्ग पर चले तो अपना पतन भी कर सकता है । मनुष्य के पास तीन शक्तियाँ हैं—मन, वचन और काय । प्रस्तुत पाठ में इन्हीं तीनों शक्तियों से दिन-रात में होनी वाली भूलों का परिमार्जन किया जाता है और भविष्य में अधिक सावधान रहने की सुदृढ़ धारणा बनाई जाती है ।

यह प्रतिक्रमण का सामान्य-सूत्र है । इसमें आचार-विचार-सम्बन्धी भूलों का प्रतिक्रमण किया जाता है । उक्त पाठ में कहा गया है, कि—

‘मैं स्थिरचित्त होकर कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ । मैंने मन, वचन, काय से जो कोई अतिचार किया, सूत्र-विरुद्ध भाषण किया धर्म के प्रतिकूल आचरण किया, न करने योग्य काम लिया, आर्त-ध्यान एवं रौद्र-ध्यान, किया, मेरे मन में अशुभ विचार पैदा हुए, स्वीकृत नियमों का भंग किया, अयोग्य वस्तु की अभिलाषा की, श्रावक-धर्म के विपरीत आचरण किया, ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र्य की साधना में मन, वचन, और काय को स्थिर न रखा, क्रोध, मान, माया एवं लोभ—इन चार कषायों का दमन न किया ।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—श्रावक के इन बारह व्रतों की एक देश से खण्डना की हो, सर्व देश से विराधना की हो, उक्त दोषों में से किसी भी दोष का सेवन किया हो, तो वह मेरा दोष दूर हो ।’

# श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र



**अतिचार की आलोचना**



## व्रत के दूषण

व्रत के चार दूषण होते हैं—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ।

किसी भी स्वीकृत व्रत तोड़ने का संकल्प करना, अतिक्रम है । तोड़ने के साधन जुटाना, तैयार करना, व्यतिक्रम है । व्रत को एक देश से, एक अंश से खण्डित करना, अतिचार है । व्रत को सर्वदेश से, पूर्णरूप से भंग करना, अनाचार है ।

: ३ :

## ज्ञानातिचार

**मूल :** आगमे तिविहे पणणेचे । तंजहा-सुत्तागमे,  
अत्थागमे, तदुमयागमे । एयस्स सिरिणाणस्स  
जो मे अइयारो कओ, तं आलोएमि ।

जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं  
पय-हीणं, विणय-हीणं, जोग-हीणं, घोस-हीण,  
सुट्ट दिन्नं, दुट्ठु पडिच्छियं ।

अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ  
सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए  
न सज्झाइयं ।

जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्य मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

**अर्थ :**

आगम तीन प्रकार का कहा है । जैसे कि, शब्दरूप  
आगम, अर्थरूप आगम, उभयरूप आगम । इस  
ज्ञान का जो मैंने अतिचार किया हो, तो उस की  
मैं आलोचना करता हूँ ।

सूत्र को उलट-पलट कर पढ़ा हो, अन्य सूत्रों का पाठ  
अन्य सूत्रों से मिलाया हो, हीन-अक्षरयुक्त पाठ  
किया हो, अधिक, अक्षरयुक्त पाठ किया हो, पद-  
हीन पढ़ा हो, विनयरहित पाठ किया हो, योग-हीन  
पढ़ा हो, उदात्त आदि स्वररहित पढ़ा हो, पात्र-कुपात्र

का विचार लिए बिना पढ़ाया हो, दुष्ट भाव से ग्रहण किया हो ।

अकाल में स्वाध्याय किया हो, काल में स्वाध्याय न किया हो, अस्वाध्याय में स्वाध्याय किया हो, स्वाध्यायकाल में स्वाध्याय न किया हो ।

जो मंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किया हो, तो उस का पाप मेरे लिए मिथ्या हो ।

**व्याख्या :**

जैनधर्म में श्रुत (ज्ञान) को भी धर्म कहा है । बिना श्रुत-ज्ञान के चरित्र कैसा ? श्रुत तो साधक के लिए तीसरा नेत्र है, जिसके बिना जीव शिव बन ही नहीं सकता । साधक को आगम-चक्षु कहा गया है ।

श्रुत की, आगम की आशातना साधक के लिए अत्यन्त भयावह है । जो श्रुत की अवहेलना करता है, वह साधना की अवहेलना करता है, धर्म की अवहेलना करता है । श्रुत के लिए अत्यन्त श्रद्धा रखनी चाहिए । उसके लिए किसी प्रकार की अवहेलना का भाव रखना घातक है ।

प्रस्तुत पाठ में कहा गया है, कि—“मैंने शब्दरूप, अर्थ-रूप एवं उभयरूप—तीनों प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में जो किसी प्रकार का अतिचार किया हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ ।

प्रस्तुत पाठ में ज्ञान के चौदह अतिचार बताए गए हैं । जैसे-सूत्र को उलट-पलट कर पढ़ना, अन्य सूत्रों का पाठ अन्य-सूत्रों में मिला कर पढ़ना, हीन अथवा अधिक अक्षर पढ़ना, विनयरहित हो कर पढ़ना, उदात्त आदि स्वररहित पढ़ना, पात्र-अपात्र का विचार किए बिना

स्वाध्याय के काल में स्वाध्याय न करना, मृतक कलेवर आदि से युक्त अशुचि स्थान में स्वाध्याय करना और स्वाध्याय के योग्य शुचि-स्थान में प्रमादवश स्वाध्याय न करना आदि ज्ञान के चौदह अतिचारों का वर्णन इस में किया गया है ।

: ४ :

## दर्शनातिचार

दर्शन सम्यक्त्व-रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. जिन-व्रचन<sup>१</sup> में शङ्का की हो,
  २. पर-दर्शन<sup>२</sup> की इच्छा की हो,
  ३. कर्म-फल<sup>३</sup> के विषय में सन्देह किया हो,
  ४. पर-पाखण्डी की प्रशंसा की हो,
  ५. पर-पाखण्डी का संस्तव (परिचय) किया हो,
- जो मैंने दिवस-सन्ध्या अतिचार किये हों, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

: ५ :

## प्रथम अहिंसा-अणुव्रत के अतिचार

प्रथम—स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. क्रोधादि-वश त्रस जीवों को गाढ़े बन्धन से बाँधा हो,
२. गाढ़ा घाव किया हो,

---

१. जिनभाषित तत्त्व में,

३. अंगोपांगों का छेदन-भेदन किया हो,  
 ४. प्रमाण से अधिक भार लादा हो,  
 ५. भक्त-पान<sup>१</sup> का विच्छेद किया हो'  
 जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा  
 मि दुक्कडं ।

: ६ :

### द्वितीय सत्य-अणुव्रत के अतिचार

द्वितीय—स्थूल मृषावाद-विरमणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ,

१. किसी को झूठा कलंक दिया हो,
२. किसी का रहस्य प्रकट किया हो,
३. स्त्री-पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो,
४. किसी को मिथ्या उपदेश दिया हो,
५. कूट लेख लिखा हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा  
 मि दुक्कडं ।

: ७ :

### तृतीय अस्तेय-अणुव्रत के अतिचार

तृतीय—स्थूल अदत्तादान-विरमणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ -

१. चोर की चुराई वस्तु ली हो,
२. चोर को सहायता दी हो,

३. भोजन-पानी ।

३. राज्य<sup>१</sup>-विरुद्ध काम किया हो ।

४. झूठा तोल, झूठा माप किया हो,

५. वस्तु में मेल-संमेल<sup>२</sup> किया हो,

जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

: ८ :

### चतुर्थ ब्रह्मचर्य-अणुव्रत के अतिचार

चतुर्थ—स्थूल मैथुन-विरमण-व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. इत्वरिक परिग्रहीता से गमन किया हो,

२. अपरिग्रहीता से गमन किया हो,

३. अनङ्गक्रीडा की हो,

४. पर-विवाह कराया हो,

५. काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

: ९ :

### पंचम अपरिग्रह-अणुव्रत के अतिचार

पंचम—स्थूल परिग्रह-परिमाणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

१. खेत, घर आदि के परिमाण का अतिक्रमण किया हो

२. हिरण्य<sup>३</sup>सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

१. विरोधी राज्य में व्यापार आदि के लिए प्रवेश किया हो ।

३. धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
  ४. द्विपद-चतुष्पद के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
  ५. कुप्य<sup>२</sup> के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
- जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा मिदुक्कडं ।

: १० :

## षष्ठ दिशा-परिमाण-व्रत के अतिचार

षष्ठ—दिशा-परिमाण-विरमणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

१. ऊर्ध्वदिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
२. अधोदिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
३. तिर्यक्<sup>३</sup> दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो
४. क्षेत्र-वृद्धि की हो,
५. क्षेत्र-परिमाण के विस्मृत हो जाने से, क्षेत्रपरिमाण का अतिक्रमण किया हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा मिदुक्कडं ।

: ११ :

## सप्तम उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत के अतिचार

सप्तम—उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

१. द्विपद = दास-दासी, चतुष्पद = गाय आदि पशु,
२. बरतन आदि घर की सामग्री,
३. पूर्व, पश्चिम आदि तिरछी दिशा ।

२. सचित्त<sup>१</sup>-प्रतिबद्ध का आहार किया हो,

३. अपक्व का आहार किया हो,

४. दुष्पक्व का आहार किया हो,

५. तुच्छ<sup>२</sup>-औषधि का आहार किया हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

: १२ :

## पंचदश कर्मादान

पञ्चदश—कर्मादान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

इंगाल-कम्मे, वण-कम्मे, साडी-कम्मे भाडी-कम्मे, फोडी-कम्मे ।

दंत-वाणिज्जे, लक्ख-वाणिज्जे, रस-वाणिज्जे' केस-वाणिज्जे, विस-वाणिज्जे ।

जंतपीलणिया-कम्मे, निल्लंछणिया-कम्मे, दवग्गि-दावणिया-कम्मे, सर-दह-तालाव-सोसणिया-कम्मे, असइजण-पोसणिया-कम्मे ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

१. सचित्त-संयुक्त,

२. बड़, पीपल आदि के असार फल अथवा जिनमें डालने योग्य भाग अधिक हो, वे फल ।



: १३ :

## अष्टम अनर्थदण्ड-विरमणव्रत के अतिचार

अष्टम अनर्थ—दण्डविरमणव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

१. काम-कथा की हो,
२. भाण्ड-चेष्टा की हो,
३. बिना प्रयोजन अधिक बोला हो,
४. अधिकरण जोड़ कर रखे हों,
५. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाये हों,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्य मिच्छा मि दुक्कडं ।

: १४ :

## नवम सामायिक-व्रत के अतिचार

नवम—सामायिक-व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ :—

१. मन का अशुभयोग प्रवर्तिया हो,
२. वचन का अशुभयोग प्रवर्तिया हो,
३. काय का अशुभयोग प्रवर्तिया हो,
४. सामायिक की स्मृति न की ही,
५. सामायिक का काल पूर्ण न किया हो,

: १५ :

## दशम देशावकाशिक-व्रत के अतिचार

दशम देशावकाशिक—व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. मर्यादित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो,
२. मर्यादित सीमा के बाहर की वस्तु भेजी हो,
३. शब्द करके चेतया हो,
४. रूप दिखा कर अपना भाव प्रकट किया हो,
५. कंकर आदि फैंक कर दूसरे को बुलाया हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तो तस्य मिच्छामि दुक्कडं ।

## एकादश पौषव्रत के अतिचार

: १६ :

एकादश—पौषध्व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. पौषध्व्रत में शय्यासंथारा की प्रतिलेखना न की हो,
२. उसकी प्रमार्जना न की हो
३. उच्चार-पासवणभूमि की प्रतिलेखना न की हो,
४. उसकी परिमार्जना न की हो,
५. पौषध्व्रत का सम्यक् पालन न किया हो,

## द्वादश अतिथि-संविभागव्रत के अतिचार

द्वादश अतिथि संविभागव्रत के विषय में जो कोई अति-चार लगा हो, तो उसको मैं आलोचना करता हूँ—

१. सूझती वस्तु सचित्त वस्तु पर रखी हो,
२. अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढँक दिया हो,
३. काल का अतिक्रमण किया हो,
४. अपनी वस्तु को दूसरे की बताया हो,
५. मत्सर-भाव से दान दिया हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

## संलेखना के अतिचार

संलेखना के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

१. इस लोक के सुख की वाञ्छा की हो,
२. पर-लोक के सुख की वाञ्छा की हो,
३. असंयत जीवन की वाञ्छा की हो,
४. मरण की वाञ्छा की हो,
५. कामभोग की वाञ्छा की हो,

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

## अष्टादश पापस्थानक

अष्टादश पापस्थानक के विषय में, जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ—

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मीथुन, परिग्रह,  
क्रोध, मान-माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान,  
पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शन  
शल्य

इन अष्टादश पापस्थानों में से जो कोई दिवस-सम्बन्धी  
पापस्थान का सेवन किया हो, कराया हो, अनुमोदन किया हो,  
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

: २० :

## निन्यानवे अतिचार

चौदह ज्ञान के, पांच सम्प्रक्त्व के आठ, बारह व्रतों के,  
पन्द्रह कर्मादान के, पांच संलेखना के, इस प्रकार निन्यानवे  
अतिचारों के विषय में, जो कोई दिवस-सम्बन्धी,

अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार,

सेवन किया हो कराया हो, अनुमोदन किया हो, तस्स  
मिच्छा मि दुक्कडं ।

: २१ :

## समग्र अतिचार-चितन

मूल : तस्स सव्वस्स, देवसियस्स अइयारस्स,  
दुब्भासियस्स, दुब्बिचिन्तियस्स, दुच्चिद्धियस्स  
आलोयंतो पडिदकमामि,

अर्थ : उस सब की, (अर्थात्) दिवस-सम्बन्धी अतिचारों की, जो दुर्वचनरूप है, बुरे संकल्परूप हैं, काय की कुचेष्टारूप है—आलोचना करता हुआ प्रतिक्रमण करता है ।

प्रस्तुत पाठ में, समस्त अतिचारों की आलोचना की गई है । साधक कहता है, कि मैंने अपने मन में जो बुरा चिन्तन किया, वाणी से किसी के प्रति बुरा-भला कहा, काय से खोटी चेष्टा की हो, तो उस सब पाप की मैं आलोचना करता हूँ ।

प्रत्येक व्रत के अलग-अलग अतिचारों की आलोचना करने के बाद इस में समग्र-भाव से आलोचन किया गया है ।

: २२ :

## द्वादशावर्त गुरु-वन्दनसूत्र

मूल : इच्छामि खमा-समणो ! वंदितुं, जवणिज्जाए,  
 निसीहियाए । अणुजाणह मे मिउग्गहं ।  
 निसीहि, अहोकायं, काय-संफासं ।  
 खमणिज्जो मे किलामो ।  
 अप्पकिलंताणं बहु-सुमेण मे दिवसो वइ-  
 ककंतो !  
 जत्ता मे ! जवणिज्जं च मे !  
 खामेमि खमा-समणो ! देवसियं वइक्कमं ।

खमा-समणाणं देवसियाए, आसायणाए,  
 तित्तिसन्नयराए जं किं चि मिच्छाए, मण-  
 दुक्कडाए- वय-दुक्कडाए- काय-दुक्कडाए,  
 कोहाए, माणाए मायाए, लोहाए, सव्व-  
 कालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए सव्व  
 धम्माइक्कमणाए !

जो मे (देवसियो) अइयारो कओ,  
 तम्स खमा-समणो ! पडिक्कमामि-  
 निंदामि- गरिहामि- अप्पाणं वोसिरामि ।

अर्थ : (वन्दना की आज्ञा) ।

हे क्षमा-श्रमण ! यथाशक्ति पापक्रिया से निवृत्त हुए शरीर से (आपको) वन्दना करना चाहता हूँ । (अवग्रह-प्रवेश की आज्ञा अतः मुझको परिमित अवग्रह की, अर्थात् अवग्रह में कुछ सीमा तक प्रवेश करने की आज्ञा दीजिए ।

(गुरु की ओर से आज्ञा होने पर, गुरु के समीप बैठ कर) अशुभक्रिया को रोक कर (आपके) चरणों का अपनी काया से—मस्तक से और हाथ से स्पर्श (करता हूँ) (मेरे छूने से) आपको जो बाधा हुई वह क्षन्तव्य = क्षमा के योग्य है ।

(कायिक कुशल की पृच्छा) अल्प ग्लान वाले आप श्री का बहुत आनन्द से आज का दिन बीता ?)

संयम-यात्रा की पृच्छा) आपकी संयम-यात्रा (निर्बाध है ?

यापनीय की पृच्छा) और आपका शरीर, मन तथा इन्द्रियाँ पीड़ा से रहित हैं ?

(गुरु की ओर से 'एवं' कहने पर स्वापराधों की क्षमा याचना) हे क्षमाश्रमण ! (मैं) दिवससम्बन्धी अपने अपराध को खमाता हूँ, चरण-करणरूप आवश्यक क्रिया करने में जो भी विपरीत अनुष्ठान हुआ हो, उससे निवृत्त होता हूँ !

(विशेष स्पष्टीकरण) आप क्षमा-श्रमण की दिवस-सम्बन्धिनी तैत्तीस में से किसी भी आशातना के द्वारा (आशातना के प्रकार) जिस किसी भी मिथ्या-भाव से की हुई, दुष्ट मन से की हुई, दुष्ट वचन से की हुई, क्रोध से की हुई, मान से की हुई, माया से की हुई, शरीर की दुश्चेष्टाओं से की हुई, लोभ से की हुई, सब काल में की हुई सब प्रकार के मिथ्या-भावों-से पूर्ण सब धर्मों को उल्लंघन करने वाली आशातना से । जो भी मैंने (दिवस में) अतिचार किया हो, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, विशेष निन्दा करता हूँ, आशातनाकारी अतीत आत्मा का पूर्ण रूप से परित्याग करता हूँ ।

१ जहाँ दिवस-सम्बन्धी प्रतिक्रमण हो, वहाँ 'देवसिओ' जहाँ राचि-

**व्याख्या :**

यह गुरुवन्दनसूत्र है। षट् आवश्यक में तीसरा आवश्यक वन्दन है। गुरु को विनम्रभाव से वन्दन करना और सुख-शान्ति पूछना, शिष्य का परम कर्तव्य है। साधक पर गुरु का महान् उपकार होता है, क्योंकि गुरु ही साधना-पथ का निर्देशक होता है। अरिहन्तों के बाद में गुरु ही आध्यात्मिक साम्राज्य के अधिपति हैं। गुरु को वन्दन करना, भगवान् को वन्दन करना है। प्रस्तुत पाठ में गुरुवन्दन की पद्धति का वर्णन है।

आज का मानव धर्म-कर्तव्य से शून्य होता जा रहा है। उसके जीवन में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति बढ़ रही है। विनय एवं नम्रता के स्थान में अहंकार जागृत हो रहा है। आज वह पुरानी आदर्श पद्धति कहाँ है, कि गुरु के आते ही खड़ा हो जाना, सामने जाना, आसन अर्पण करना, और कुशलक्षेम पूछना। गुरु का विनय करने से तथा गुरु की सेवा करने से शास्त्र के गम्भीर ज्ञान की प्राप्ति होती है।

शिष्य का गुरु के प्रति क्या कर्तव्य है? गुरु को वन्दन कैसे किया जाता है? कैसे उनकी सुख-शान्ति पूछी जाती है। यही वर्णन प्रस्तुत पाठ में किया गया है।



## श्रावक की परिभाषा

श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनम्,  
दानं वपेदाशु वृणोति दर्शनम् ।  
कृन्तत्यपुण्यानि करोति संयमं,  
तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥

‘श्रावक’ शब्द में तीन अक्षर हैं—‘श्रा’ ‘व’ तथा ‘क’ ।

जो श्रद्धा-शील है, जो यथा शक्ति दान करता है, जो पाप का क्षय करता है, ओर जो संयम की साधना में संलग्न है—वस्तुतः वही सच्चा श्रावक है ।

# श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र

---



श्रावक सत्र

## प्रतिक्रमण

जं दुक्कडं ति मिच्छा,  
तं भुज्जो कारणं अपूरेतो ।  
तिविहेणं पडिक्कंतो ;  
तस्स खलु दुक्कडं मिच्छा ॥

जो साधक त्रिविध योग से प्रतिक्रमण करता है, जिस पाप के लिए मिच्छा मि दुक्कडं दे देता है, फिर भविष्य में उस पाप को नहीं करता है—वस्तुतः उसीका दुष्कृत मिथ्या अर्थात् निष्फल होता है ।

## मंगल-सूत्र

मूलः चत्वारि मंगलं—

अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं,  
केवलि-परणत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्वारि लोगुत्तमा—

अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू  
लोगुत्तमा, केवलि-परणत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्वारि सरणं पव्वज्जामि—

अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं  
पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-परणत्तं  
धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

अर्थ : संसार में चार मंगल हैं—

अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिन-भाषित धर्म ।  
संसार में चार उत्तम हैं—

अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिन-भाषित धर्म ।  
संसार में चार शरणरूप हैं—

अरिहन्त, सिद्ध, साधु और जिन-भाषित धर्म ।

व्याख्या :

मंगल की अभिलाषा किसको नहीं है । संसार का प्रत्येक प्राणी मंगल चाहता है । संसार में सर्वश्रेष्ठ मंगल चार ही हैं, ये कभी भी अमंगल नहीं होते । ये सदा मंगलरूप हैं ।

संसार में उत्तम क्या है ? धन, जन, तन, ? कभी नहीं । ये सब नश्वर तत्त्व हैं ? आज हैं, कल नहीं । अतः ये सब श्रेष्ठ (उत्तम) नहीं हो सकते । उत्तम चार ही हैं, ये कभी अनुत्तम नहीं होते ।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, वे मनुष्य को शरण नहीं दे सकते । धन, जन, राज्य एवं वैभव—ये सब मिथ्या हैं, क्षणिक हैं । फिर शरण क्या दोगे ? सच्चे शरण चार हैं, जो कभी अशरण रूप नहीं होते ।

: २४ :

### सम्यक्त्व-सूत्र

मूल : अरिहंतो मह देवो,  
जावज्जीवं सु-साहुणो गुरुणो ।  
जिणपणत्तं तत्तं,  
इय सम्मत्तं मए गहियं ॥

एयस्स सभ्मत्तस्स समणोवासएणां पंच अइ-  
यारा पेयाला जाणियच्चा, न समायरियच्चा ।  
तं जहा—संक्रा, कंखा, वित्तिगिच्छा, पर-पासंड-  
पसंसा, पर-पासंड-संथवो ।  
जो मे देवसिओ अइयारो कओ,  
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : अरिहंत मेरे देव हैं, जीवनपर्यन्त बुद्ध साधु मेरे गुरु हैं, जिन-भाषित तत्व मेरा धर्म है । इस सम्यक्त्व को मैंने ग्रहण किया है ।

श्रमणोपासक को इस सम्यक्त्व के पाँच अतिचार प्रधानरूप से जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण के योग्य नहीं हैं ।

जैसे कि—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, पर-पाखण्ड-प्रशंसा, पर-पाखण्ड-संस्तव ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किया हो, उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

प्रस्तुत पाठ में सम्यक्त्व का स्वरूप बताया गया है, और उसके पाँच अतिचार भी बताए गए हैं ।

जब तक सम्यक्त्व की संशुद्धि नहीं हो जाती, तब तक व्रतों की आराधना एव पालना भी सम्यक् रूप से नहीं हो सकती । 'दंसण-मूलो धम्मो', धर्म का मूल सम्यक्त्व है । अतः बारह व्रतों के स्वरूप से पूर्व दर्शन का स्वरूप बताया गया है । बारह व्रत भी दर्शन-मूलक ही होते हैं ।

: २५ :

## प्रथम अहिंसा अणुव्रत

मूल : पढमं अणुव्वयं धूलाओ पाणाइवायाओ वेर मणं । तस-जीवे-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-जीवे संकप्पओ हणण-हणावण-पच्चक्खाणं । स-सरीरं स-विसेस-पीढाकारिणो,

स-सम्बन्धिय स-विसेस पीडाकारिणा वा वज्जि-  
ऊण, जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणं, न करेमि,  
न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ।  
एयस्स थूलग-पाणाइवाय वेरमणस्स समणो-  
वासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियच्चा,  
न समायरियच्चा ।  
तं जहा-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे,  
भत्त-पाण-विच्छेए ।  
जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : प्रथम अणुव्रत है—स्थूल प्राणातिपात से (जीवहिंसा से) विरत होना, अलग होना । अस जीव-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चत्त्रिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय जीवों को, संकल्प पूर्वक, मारने मरवाने का प्रत्याख्यान (त्याग) है । स्व-शरीर को विशेष पीडा देने वाले को, तथा स्व परिजन के शरीर को विशेष पीडा देने वाले को छोड़ कर, जीवनपर्यन्त दो करण तीन योग से—(स्थूलहिंसा) न करूँ, न करवाऊँ. मन से, वचन से, काय से ।

इस स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत के श्रमणो-पासक को (श्रमणोपासिका को) पाँच अतिचार प्रधान (मुख्य) जानने योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं ।

१, श्राविका 'समणोवासियाए' पाठ याद करे :

जैसे—बन्ध = बाँधना, वध = मारना, छविच्छेद = चमड़ी का छेदन, अतिभार × अधिक भार लादना, भक्त-पान विच्छेद = खाने-पीने में अन्तराय डालना ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

ध्याख्या :

विचार :

वस्तु-तत्त्व को समझने के लिए विचार की, ज्ञान की आवश्यकता है । संसार के सब क्लेश एक मात्र आत्मा के अज्ञान पर ही आधारित हैं । अज्ञान को दूर करने का साधन, आत्मज्ञान के सिवा, अन्य क्या हो सकता है ? आत्मा का स्वरूप क्या है ? कर्म क्या है ? बन्धन क्या है ? कर्म आत्मा के क्यों लगते हैं ? आदि प्रश्नों का सुन्दर समाधान सम्यग्ज्ञान है । जब तक **Right Knowledge** न हों, तब तक आत्मा भव-बन्धनों से विमुक्त नहीं हो सकता ।

आचार :

विचार का फल, ज्ञान का फल है—आचार अर्थात् विरति । ज्ञान होने पर भी यदि विषयों में विरक्ति नहीं आए, तो समझना चाहिए वह ज्ञान ही कैसा ? सूर्योदय हो जाने पर भी अन्धकार बना रहे, यह कैसे ? विचार जब क्रिया का रूप लेता है, तब उसको आचार कहा जाता है । साधक-जीवन में जब तक **Right Conduct** न हो, तब तक ज्ञान पाना भी सार्थक नहीं होता । अतः शास्त्रकार कहते हैं—‘ज्ञानस्य फलं विरतिः ।’

आचार— विरति के भेद

विरति के दो भेद हैं—देश-विरति और सर्व-विरति । देश-विरति को अणुव्रत और सर्व-विरति को महाव्रत कहते हैं । देशविरति को



शास्त्र में श्रावक-धर्म और सर्व-विरति को श्रमण-धर्म भी कहा गया है। श्रावक के पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं। श्रावक द्वादशव्रती होता है, और श्रमण पंच महाव्रती होता है। चरित्र-रूप धर्म के ये दो भेद पाल अर्थात् अधिकारी की न्युनाधिक योग्यता के आधार पर किए गए हैं, वैसे धर्म तो अपने आप में एक अखण्ड तत्व होता है।

### अहिंसा :

प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन प्रिय है। सब अपने जीवन की सुरक्षा चाहते हैं। परन्तु यह सुरक्षा बिना अहिंसा के कैसे हो सकेगी ? अतः अहिंसा आध्यात्मिक जीवन की नींव है। व्रतों में यह सब से पहला व्रत है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है। सब धर्मों में यह श्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा का मार्ग-खांडे की धार पर चलने जैसा है। अहिंसा से शान्ति प्राप्त होती है। क्या हिंसा से भी कभी शान्ति मिल सकती है ? **Nothing good ever comes of violence.** हिंसा में से कभी अच्छा परिणाम नहीं आया है और जिसमें से अच्छा परिणाम न आए, वह धर्म कैसे हो सकता ? क्रूर व्यक्ति अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। अहिंसा के पालन के सदस्य हृदय ही विशेष रूप से अपेक्षित है। **Paradise is open to all kind hearts.** स्वर्ग के द्वार दयाशील व्यक्तियों के लिए सदा खुले रहते हैं। अहिंसा में अपार शक्ति है।

### प्रथम अणुव्रत

स्थूल प्राणातिपात (हिंसा) से विरत हो जाना पहला अणुव्रत है। यहाँ पर स्थूल शब्द से द्वीन्द्रिय जीव से पञ्चेन्द्रिय जीव तक ग्रहण किए गए हैं। किसी जीव के प्राणों का अतिपात (विनाश) प्राणातिपात कहा जाता है। प्राणातिपात दो प्रकार का होता है—संकल्पज और आरम्भज संकल्प अर्थात् जान-बूझ कर द्वीन्द्रिय आदि त्रसजीवों का मांस,

अस्थि, चर्म, नख, केश, दांत आदि के लिए या वैर-पूर्ति के लिए मारना संकल्पज प्राणातिपात है। आरम्भ से पैदा होने वाले प्राणातिपात को आरम्भज कहते हैं—जैसे, भूमि खोदने, घर बनाने, व्यापार करने आदि के रूप में। प्रथमव्रत की साधना करने वाला श्रावक, उक्त दोनों हिंसाओं में से जान-बूझ कर निरपराध प्राणियों की संकल्पज हिंसा का तो जीवन भर के लिए त्याग कर देता है। परन्तु आरम्भज हिंसा को श्रावक पूर्णरूप से नहीं छोड़ सकता। क्योंकि गृहस्थ-जीवन में स्थावर (पृथ्वी, जल, तेजस् वायु और वनस्पतिकाय) की हिंसा से पूर्णरूप में बचा नहीं जा सकता। अतः स्थावर-हिंसा की वह अपनी परिस्थिति के अनुसार उचित मर्यादा कर सकता है।

### अतिचार :

प्रथम अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं। अतिचार व्रत का दूषण है। अतः वह जानने योग्य तो है, पर आचरण करने योग्य नहीं होता। अतः उसका आचरण नहीं करना चाहिए। अतिचार का सेवन करने से गृहीत व्रत दूषित हो जाता है। अहिंसा-अणुव्रत का पालन करने वाले श्रावकों को निम्नलिखित दोषों से बचना चाहिए।

### बन्ध :

रज्जु आदि से किसी प्राणी को बाँधना, बन्ध कहलाता है। बन्ध के दो भेद होते हैं—द्विपद-बन्ध और चतुष्पद-बन्ध। दासी आदि का बन्ध, तोता मैना आदि का बन्ध, द्विपद-बन्ध है। गाय, भैंस और घोड़ा आदि का बन्ध, चतुष्पदबन्ध है। उक्त बन्ध दो कारणों से होता है—प्रयोजन के लिए, अर्थ के लिए। और बिना प्रयोजन के (अनर्थ के लिए) बिना प्रयोजन के बिना मतलब के श्रावक किसी को बाँधता नहीं है, क्योंकि वह अनाचार हो जाएगा। अर्थ (प्रयोजन) बन्ध के भी दो भेद

है—निरपेक्ष और सापेक्ष । दया-शून्य कठोर बन्ध को, गाढ़बन्ध को निरपेक्षबन्ध कहते हैं यह अतिचार है । इस प्रकार का बन्ध भी श्रावक का धर्म नहीं । दूसरा सापेक्षबन्ध है । प्रयोजन आने पर जो कोमल भाव से बन्ध किया जाता है, उसको सापेक्षबन्ध करते हैं । दास-दासी और पशु आदि को यदि वे उद्दण्डता आदि करते हों, तो उनको सुधारने के लिए जो अन्तर में कोमल-भाव रखते हुए बाहर में मर्यादित कठोर बन्धन किया जाता है, उसको सापेक्षबन्ध कहते हैं ।

वध :

वधका अर्थ है—ताड़ना, पीटना और मारना । प्राणों का अपहरण किए बिना मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि का जो दण्ड आदि साधनों से ताड़न किया जाता है, वह वध है । इसके भी दो भेद हैं—अर्थ के लिए और अनर्थ के लिए । उसके फिर दो भेद हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष । अपराधी या उद्दण्ड आदि व्यक्ति को दण्ड देने के लिए, कोमल-भाव से सुधारने की भावना से, जो ताड़न किया जाता है, वह अतिचार-रूप नहीं होता । अतिचार की सीमा निरपेक्षता में है, सापेक्षता में नहीं छविच्छेद :

छवि (त्वचा) आदि का छेदन करना । इसके भी दो भेद हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष । करुणा-रहित हो कर किसी की त्वचा (चमड़ी) आदि का छेदना, काटना, निरपेक्ष छविच्छेदन है । और करुणा रखते हुए किसी रोगी की चीर-फाड़ करना सापेक्ष छविच्छेद कहा जाता है ।

अतिभार :

किसी मनुष्य अथवा किसी पशु पर शक्ति से अधिक भार लादना, अतिभार नामक अतिचार है । श्रावक को गाड़ी आदि से अपनी आजीविका नहीं चलानी चाहिए । यदि कभी प्रयोजनवश चलानी ही पड़े तो सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान अवश्य रखना चाहिए । मनुष्य, पशु आदि पर इतना भार नहीं लादना चाहिए, जिसको उनको अतिपीड़ा हो, और उनके अंग-भंग हो जाने की सम्भावना हो ।

### भक्त-पान-विच्छेद :

भक्त (भोजन) और पान (पानी) ; इनके विच्छेद (अन्तराय) को भक्त-पान-विच्छेद करते हैं । इसके भी दो भेद हैं — सापेक्ष और निरपेक्ष श्रावक का यह कर्तव्य है, कि अपने आश्रित मनुष्य एवं पशु आदि के भोजन-पान का यथावसर पूरा ध्यान रखे । निरपेक्ष हो कर किसी के भक्त-पान में अन्तराय नहीं डालनी चाहिए । हाँ, रोगादि कारण से भक्त-पान न देना हो तो वह सापेक्ष है, सप्रयोजन है । अतः उसकी गणना अतिचार में नहीं की जाती ।

: २६ :

### द्वितीय सत्य-अणुव्रत

मूल : वीयं अणुव्वयं थूलो मुसावायाओ वेरमणं ।  
से मुसावाए पंचविहे पन्नते ।

तंजहा-कन्नालीए, गवालीए, भोमालीए,  
णासावहारे (थापणमोसे), कूड-सक्खिज्जे ।  
इच्चवेवमाइयस्स थूल-मुसावायस्स पच्चक्खाणं ।  
जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न  
न कारवेमि' मणसा' वयसा' कायसा ।

एयस्स वीयस्स थूलग-मुसावायवेरमणस्स  
समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा' न  
समायरियव्वा ।

तं जहा-सहसाब्भक्खाणे, रहस्साब्भक्खाणे,

‘सदारमंत-भेए, मोसोवएसे’ कूडलेह-करणे ।  
जो मे देवसिओ अइयारो कओ’ तस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : द्वितीय अणुव्रत है—स्थूल मृषावाद (झूठ) से विरत होना-अलग होना । और वह मृषावाद पांच प्रकार का कहा गया है ।

जैसे - कन्या-सम्बन्धी झूठ, गाय-सम्बन्धी झूठ, भूमि-सम्बन्धी झूठ, धरोहर-सम्बन्धी झूठ, झूठी साक्षी- (गवाही सम्बन्धी झूठ) । इत्यादि स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान (त्याग) जीवन-पर्यन्त, दौ करण तीन योग से-न बोलूँ, न बुलाऊँ, मन से, वचन से काय से । इस द्वितीय स्थूल मृषावादविरमणव्रत के श्रमणोपासक को (श्रमणोपासिका को) पांच अति-चार जानने के योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं ।

जैसे—सहसाम्याख्यान=बिना सोचे विचारे किसी पर कलंक लगाना, रहस्याभ्याख्यान=रहस्य की (गुप्त) बातों को प्रकट करना, स्वदारा-मंत्र-भेद=स्वपत्नी के मन्त्र (गुप्त मर्म) को प्रकट करना, मृषो-पदेश=मिथ्या उपदेश करना, कूट-लेख=करण = झूठा लेख लिखना ।

जो मैं ने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

श्राविका (सभत्तार-मंतभेए) पाठ याद करें ।

व्याख्या :

सत्य :

सत्य परम धर्म । सत्य से बढ़कर अन्य दूसरा कोई धर्म नहीं है । भगवान् महावीर ने सत्य को 'भगवान्' कहा है । 'त सच्चं खु भगवं ।' अर्थात् सत्य ही भगवान् है । सत्य में स्थिर रहने वाला व्यक्ति मृत्यु को भी जीत लेता है । सत्य-चिन्तन सत्य-भाषण और सत्य आचरण से जीवन पवित्र बन जाता है । **There is nothing so delightful as the hearing or the speaking of the truth.** इस विगट् विश्व में सत्यवचन सुनने और सत्यवचन बोलने से अधिक मधुर आनन्द कुछ भी नहीं है सत्य, लोक का सार है ।

द्वितीय अणुव्रत :

स्थूल मृषावाद (असत्य) से विरत हो जाना, अलग हो जाना द्वितीय अणुव्रत है । सत्य धर्म है, और असत्य पाप है । असत्य के पाँच भेद हैं । अथवा जिन कारणों से मनुष्य असत्य बोलता है वे असत्य के कारण पाँच हैं, जो ये हैं—

कन्यालीक :

कन्या के लिए अलीक (असत्य) बोलना, कन्यालीक है । यहाँ कन्या के विषय में जो झूठ बोलने का निषेध है, वह समस्त मनुष्यजाति के विषय में झूठ बोलने का निषेध समझना चाहिए ।

गुण-सम्पन्न कन्या या वर को गुण-हीन कहना, और गुण-हीन को गुण-सम्पन्न कहना, कन्या-सम्बन्धी असत्य है ।

गवालीक :

गाय के विषय में अलीक (असत्य) कहना । गाय से यहाँ पर अन्य पशुओं का भी ग्रहण हो जाता है । अच्छी गाय को बुरी और बुरी को अच्छी कहना ।

**भूमि-अलीक :**

भूमि के लिए अलीक बोलना, असत्य बोलना । भूमि के अन्य अचित्त वस्तुओं का ग्रहण कर लिया जाता है । सोना चाँदी-आदि के विषय में भी असत्य नहीं बोलना चाहिए ।

**न्यासापहार :**

किसी को धरोहर रखी वस्तु के लिए इन्कार कर देना । धरोहर को न लौटाना । इसकी न्यास (रखी हुई) वस्तु का अपहरण (चुराना) कहते हैं ।

**कूट-साक्ष्य :**

अपने लाभ के लिए और दूसरे की हानि के लिए, जो न्यायाधीश अथवा पांच के सम्मुख झूठी गवाही दी जाती है, उसको कूट-साक्ष्य, कूटसाक्षी कहते हैं ।

**अतिचार :**

प्रथम अणुव्रत की भाँति इसके भी पांच अतिचार हैं । व्रत के चार दूषण होते हैं—अतिक्रम-गृहीत व्रत को तोड़ने का मन में संकल्प करना, व्यतिक्रम—व्रत को भंग करने के लिए साधन जुटाना, अतिचार-व्रत तोड़ने की तैयारी, पर अभी तक तोड़ा नहीं, अनाचार-स्वीकृत मर्यादा का सर्वथा लोप कर देना । द्वितीय अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं, जो जानने योग्य हैं । (परन्तु) आचरण योग्य नहीं हैं ।

**सहसाभ्याख्यान :**

सहसा (विना बिचारे) अभ्याख्यान किसी के सम्बन्ध में कुछ का कुछ कह देना, मिथ्या दोष लगाना, झूठा कलंक देना ।

१. बिचार किये बिना ही आवेश में आ कर झट किसी पर मिथ्या आरोप लगा देना सहसाभ्याख्यान है । जैसे—‘तू चोर है, जारुत्र है.....’,

—पूज्य घासी लालजीम० कृत उपासक-दशांग टीका पृ० २८६ सहसा (बिना बिचारे) बोला हो ।

—कान्फरेन्स द्वारा प्रकाशित प्रतिक्रमण-सूत्र पृ० २४

### रहस्याभ्याख्यान :

किन्हीं दो व्यक्तियों को रहसि (एकान्त स्थान में) बाल-चीत करते देख कर कहना, कि 'ये राज्य-विरुद्ध आदि मन्त्रण कर रहे थे।' किसी पर व्यर्थ का सन्देह करना।

### स्वदारामन्त्रभेद :

स्वदारा (अपनी पत्नी) के मन्त्र (मर्मभरी बाल) को भेद (प्रकट) करना। इसी प्रकार पत्नी के लिए स्व-पति-मन्त्र-भेद भी त्याज्य है।

### मृषोपदेश :

मृषा (असत्य पूर्ण) झूठा उपदेश (शिक्षा) करना। जैसे 'यज्ञ करो' तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, आदि कहना। झूठे उपदेश से भोला मनुष्य गलत रास्ते पर लगता है।

कूट (असत्यभूत) झूठा, लेख (हस्ताक्षर वा मुद्रांकन) जाली दस्तखत करना। बनावटी हस्ताक्षर करना, नकली मुहर बनाना आदि कूटलेखकरण है।

: २७ :

## तृतीय अस्तैय-अणुव्रत

मूल : तइयं अणुव्वयं थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं । से य अदिण्णादाणे पंचविहे पन्नत्ते । तंजहा-खत्त-खण्णं- गठि-भेअणं, जंतुग्घाडणं, पडियवत्थुहरणं ससामिअवत्थुहरणं । इच्चेव- माइयस्स थूल-अदिण्णादाणस्स पच्चकखाणं । जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणं न करेमि,



न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा ।  
 एयस्स तइयस्स थूलग-अदिण्णादाण-वेरमणस्स  
 समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा,  
 न समायरियव्वा ।

तंजहा-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्ध-रज्जाइ-  
 ककमे, कूडतुल्ल-कूडमाणे, तप्पडिरुवग-  
 ववहारे ।

जों मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा  
 मि दुक्कडं ।

अर्थ : तृतीय अण्व्रत है—स्थूल अदत्तादान (चोरी) से  
 विरत होना । अदत्तादान (चोरी) पांच प्रकार का  
 कहा गया है ।

वह इस प्रकार से है—खात खनना-दीवार आदि में  
 संधं लगाना, गांठ खोलना, ताला तोड़ना, पड़ी हुई  
 वस्तु को लेना, दूसरे की वस्तु को लेना इत्यादिक  
 स्थूल अदत्तादान (चोरी) का प्रत्याख्यान (त्याग)  
 करना । जीवनपर्यन्त, दो करण तीन योग से, न  
 करूँ, न करवाऊँ, मन से, वचन से, काय से ।  
 इस तृतीय स्थूल अदत्तादान-विरमणव्रत के श्रमणो-  
 पासक को पांच अतिचार जानने योग्य हैं, (किन्तु)  
 आचरण करने योग्य नहीं हैं ।

जैसे कि—स्तेन (चोर) द्वारा आहृत (चुराई हुई)  
 वस्तु ली हो, तस्कर (चोर) को प्रयोग (प्रेरणा दी)

हो, सहायता दी हो, विरुद्ध (विरोधी) राज्य में अतिक्रम (व्यापार आदि निमित्त) प्रवेश किया हो, कूट (झूठा) तोल कूट (झूठा) नाप किया हो, वस्तु में तत्प्रतिरूपक (तत्-सदृश) वस्तु का व्यवहार (मिलावट) किया हो।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किया हो, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो।

व्याख्या :

अस्तेय :

दूसरे की सम्पत्ति पर अनुचितरूप में अधिकार करना चोरी है। मनुष्य को अपनी आवश्यकता, अपने श्रम के द्वारा प्राप्त साधनों से ही पूर्ण करनी चाहिए। यदि किसी अवसर पर दूसरे की किसी वस्तु को लेना भी हो, तो बिना उसकी अनुमति के नहीं लेना चाहिए। बिना उसकी आज्ञा के अथवा बल-प्रयोग से लेना स्तेय है, चोरी है। गृहस्थ-जीवन में साधक पूर्णरूप से चोरी का त्याग नहीं कर सकता, तो कम से कम सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से सर्वथा अनुचित चोरी का त्याग तो करना ही चाहिए। जीवन को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य को अपने क्षणिक लाभ एवं स्वार्थ के लिए अपने धर्म को भी नहीं भूलना चाहिए। Dishonesty is a forsaking of permanent for temporary advantages. अप्रामाणिक होना अथवा चोरी करना, क्षणिक लाभ के लिए शाश्वत श्रेय को नष्ट करना है।

तृतीय अणुव्रत :

तृतीय अणुव्रत है—स्थूल अदत्तादान (चोरी) से विरत होना। दत्त का आदान धर्म है, और अदत्त का आदान अधर्म। चोरी पांच प्रकार से की जाती है। जैसे—सँघ लगाना, गाँठ खोलना, किसी का

ताला तोड़ना, किसी की पड़ी हुई वस्तु को ले लेना तथा दूसरे की वस्तु को बिना अनुमति के उठा लेना !

**अतिचार :**

इस तृतीय अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं। इसके चार दूषण भी हैं—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। व्रत का एक देश से खारिण्डत होना अतिचार है और सर्वदेश से भंग होना अनाचार है। प्रस्तुत अणुव्रत के पाँच अतिचार इस प्रकार से हैं, जो श्रमणोपासक को जानने के योग्य तो हैं, (परन्तु) आचरण योग्य नहीं हैं।

**स्तेनाहृत :**

चोर द्वारा चुराई वस्तु को लेना, स्तेन-आहृत है। चोरी की वस्तु सदा सस्ती बेची जाती है। जिससे लेने वाले को लोभ आ जाता है। चोर की चुराई वस्तु को लेना अतिचार है।

**तस्कर-प्रयोग :**

चोर को चोरी करने की प्रेरणा देना, तस्कर-प्रयोग है। चोरी करने वाले के समान चोरी कराने वाला भी पाप का भागी है। चोर को चोरी करने में सहायता देना भी तस्कर प्रयोग है।

**विरुद्ध-राज्यातिक्रम :**

जो राजा या देश परस्परविरोध रखते हैं, लड़ते हैं, उन राज्यों को विरुद्धराज्य कहते हैं। विरुद्धराज्य में जाने-आने को विरुद्धराज्य का अतिक्रम, उलघन कहते हैं। अथवा विरुद्धराज्य में व्यापार आदि के लिए चोरी से प्रवेश करना।

**कूट-तोल कूट-मान :**

कम तोलना और कम नापना, कूट-तोल एवं कूट-मान है। किसी से कोई वस्तु लेते समय अधिक तोलना, अधिक नापना और देते समय कम तोलना और कम नापना। लेने-देने के नाप-तोल अलग-अलग रखना भी पाप है।

**प्रतिरूपक व्यवहार :**

वस्तुओं में भेद-सभेद करना- मिलावट करना, प्रकिरूपक व्यवहार हैं, इसको तत्प्रतिरूपक व्यवहार भी कहते हैं। अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु मिला देना, अच्छी दिखा कर बुरी देना, यह सब तत्प्रतिरूपक व्यवहार है।

। २८ :

**चतुर्थ ब्रह्मचर्य-अणुव्रत**

**मूल :** चउत्थं अणुव्वयं थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं ।  
 १सदार, संतोसिए अवसेस-मेहुण-विहि-पच्च-  
 क्खाणं ।

जावज्जीवाए दिव्वं दुविहं तिविहेणं, न  
 करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा ।  
 माणुस्सं तिरिक्ख-जोगियं, एगविहं एग-  
 विहेणं, न करेमि, कायसा ।

एयस्स चउत्थस्स थूलग-मेहुण-वेरमणस्स,  
 समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न  
 समायरियव्वा ।

तंजहा-इत्तरिय-परिग्गहियागमणे, अप-  
 रिग्गहिया-गमणे, अणंग-क्रीडा पर-विवाह-  
 करणे, काम-भोग-तिव्वाभिलासे :

१ श्राविका 'सभत्तार-संतोसिए' पढ़े ।

जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : चतुर्थ अणुव्रत है—स्थूल मैथुन (संभोग) से विरत होना । स्वपत्नी में संतोष रख कर, (स्त्री स्व-पति में संतोष रख कर) अन्य सब प्रकार की मैथुन विधि (अबह्मचर्य) का प्रत्याख्यान (त्याग) करना । जीवनपर्यन्त देवता-सम्बन्धी, दो करण तीन योग, से न करूँ, न कराऊँ, मन से वचन से, काय से । मनुष्य तथा तिर्यचं-सम्बन्धी, एक करण, एक योग, से न, करूँ, काय से ।

इस चतुर्थ स्थूल मैथुल-विरमण-व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने योग्य है, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं ।

जैसे कि—इत्वरिक (अल्पकालिक) परिगृहीता (रखल स्त्री) से गमन (व्यभिचार) करना, अपरिगृहीता (वैश्या आदि) से गमन (व्यभिचार) करना, अनंग (अप्राकृतिक रीति) से क्रीडा (कामचेष्टा) करना, पर (दूसरे के लड़के-लड़की) का अथवा पर (स्वयं अपना ही दूसरा) विवाह करना, काम-भोग की तीव्र अभिलाषा करना ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य सब तपों में सबसे बड़ा तप है । ब्रह्मचर्य, शील और सदाचार जीवनविकास के लिए आवश्यक है । ब्रह्मचर्यव्रत सदाचार के लिए है, और सदाचार ही जीवन की आधार-शिला है । मनुष्य के पास विद्वता हो या न हो, उसके पास लक्ष्मी हो या न हो, परन्तु उसमें सदाचार अवश्य होना चाहिए । **Not education, but character is man's greatest need and man's greatest safeguard.** शिक्षण नहीं, पर चारित्र ही मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है, और सदाचार से ही मनुष्य की रक्षा होती है । काम वा सना से मनुष्य के अध्यात्म-जीवन का विनाश हो जाता है । अतः वासना पर संयम रखने के लिए ब्रह्मचर्य को आवश्यकता है । गृहस्थजीवन में पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन शक्य नहीं है । अतः उसे स्व-दारसन्तोष व्रत और स्त्री को स्वपतिसन्तोषव्रत का पालन करना चाहिए ।

चतुर्थ अण्व्रत :

चतुर्थ व्रत है—स्थूल मैथुन (संभोग) से विरत होना, पुरुष को स्वपत्नी में सन्तोष रख कर, स्त्री को स्व-पति में सन्तोष रखकर अन्य सब प्रकार के मैथुनों का त्याग करना । स्वदार-सन्तोष-व्रत की साधना करने वाले गृहस्थ की वासना सीमित हो जाती है, जिससे वह असीम कामेच्छा से बच जाता है । उक्त व्रत का पालन करने से दाम्पत्य-मर्यादा भी सुरक्षित होती है । पति एवं पत्नी में परस्पर विश्वास पैदा होता है ।

प्रस्तुत व्रत के भी चार दूषण हैं—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार । अनाचार में व्रतभङ्ग हो जाता है, अतिचार में व्रत देशनः खण्डित होता है ।

**अतिचार :**

ब्रह्मचर्यव्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने योग्य तो हैं, (परन्तु) आचरण के योग्य नहीं। वे इस प्रकार से हैं—  
इत्वरिक-परिगृहीतागमन :

कुछ समय के लिए पैसा देकर रखैल स्त्री को पत्नी के रूप में रखना, और उसके साथ गमन करना। स्त्री भी रखैल पति रख लेती हैं, जैसे आजकल पश्चिम के देशों में है। उत्तव्रतकी साधना करने वाले को ऐसा करना उचित नहीं है।

**अपरिगृहीता-गमन :**

जो विवाहित न हो, ऐसी वेश्या तथा विधवा, परित्यक्ता आदि स्त्री के साथ कामभोग का सेवन करना। स्त्री का विधुर आदि के साथ सम्बन्ध रखना। यह भी व्रत की सीमा से बाहर है। अतः त्याज्य है।

**अनंग-क्रीड़ा :**

अप्राकृतिक रीति से कामचेष्टा करना। कामसेवन के लिए जो प्राकृतिक अंग हैं, उनके अतिरिक्त शेष समस्त अंग, काम सेवन के लिए अनंग हैं। उन से कामक्रीड़ा करना अनंग-क्रीड़ा है।

**पर-विवाहकरण :**

दूसरे के लड़के लड़कियों का विवाह करना। कर्तव्य-वश अपने कुटुम्बीजनों के लड़के-लड़कियों का विवाह करना पड़े, तो वह अतिचार में नहीं होगा। परन्तु किसी लोभ वश दूसरों के विवाह का जोड़-

१. वेश्या, विधवा या परित्यक्ता.....!

—'गृहस्थ-धर्म' में पूज्य जवाहरलालजी म०  
भाग २, पृ० २१६

पाणि-ग्रहण की हुई पत्नी से भिन्न वेश्या, कन्या, विधवा.....!

—'उपासकदशांग' में पूज्य घासीलालजी म०  
पृ० २६८।

तोड़ लगाया जाए, तो वह अतिचार है। कुछ बिचारक पर-विवाह का एक अर्थ यह भी करते हैं, कि अपना स्वयं का दूसरा विवाह न करना।

**तीव्र-काम-भोगलिभाषा :**

कामाभिलाषा को मन्द करना चाहिए, क्षीण करना चाहिए। तीव्र कामाभिलाषा के व्रतभंग होने की सम्भावना रहती है। अतः वासना पर संयम रखने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वदार-सन्तोष-व्रत का उद्देश्य भी यही है, कि भोगाभिलाषा मन्द हो।

: २६ :

### पञ्चम अपरिग्रह-अणुव्रत

**मूल :** पंचमं अणुव्वयं थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं  
खेत-वत्थूणं जहापरिमाणं, हिरण-सुवण्णाणं  
जहापरिमाणं धण-धन्नाणं जहापरिमाणं,  
दुप्पय-चउप्पयाणां, जहापरिमाणं कुप्पस्स  
जहापरिमाणं । एवं मए जहा परिमाणं कयं,  
तओ अहरित्तस्स परिग्गहस्स पच्चक्खाणां ।  
जावज्जीवाए, एगविहं तिविहेणां, न करेमि,  
मणसा, वयसा, कायसा ।

एयस्स पंचमस्स थूलग-परिग्गह-परिमाण  
व्वयस्स समणोवासएणां पंच आइयारा जाणि-  
यव्वा, न समायारियव्वा ।

१. कुवियस्स' भी पाठ है।



तंजहा-खेत-वप्युत्पमाणाइक्कमे, हिरण्य-  
सुवर्णप्पमाणाइक्कमे, धण-धन्नप्पमाणाइक्कमे,  
दुप्पय-चउप्ययप्पमाणाइक्कमे, कुप्पप्पमा-  
णाइक्कमे ।

जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : पञ्चम अणुव्रत है—स्थूल परिग्रह से विरत होना ।  
क्षेत्र वस्तु (खेत और घर आदि) का यथापरिमाण  
(जो परिमाण किया है), हिरण्य (चाँदी) सुवर्ण  
(सोना) का यथापरिमाण धन-धान्य का यथाप-  
रिमाण, द्विपद (दास-दासी आदि का और चतुष्पद,  
(गाय, भैंस घोड़ा आदि पशु का यथापरिमाण,  
कुप्प (वरतन) आदि) का, अथवा घर की सामग्री,  
का यथापरिमाण । इस प्रकार मैंने जो परिग्रह-  
परिमाण, (मर्यादा) किया है, उसके अतिरिक्त  
रखने का, प्रत्याख्यान (त्याग) करना ।

जीवनपर्यन्त, एक करण तीन योग से, न करूँ,  
मन से, वचन से, काय से ।

इस पञ्चम स्थूल परिग्रह-परिमाण-व्रत के श्रमणो-  
पासक को पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, (किन्तु)  
आचरण के योग्य नहीं हैं ।

जैसे कि—क्षेत्र (खेत आदि) और वास्तु (घर आदि)  
के प्रमाण का अतिक्रमण करना, हिरण्य (चाँदी)  
और सुवर्ण (सोने) के प्रमाण का अतिक्रमण करना,  
धन-धान्य के प्रमाण का अतिक्रमण करना, द्विपद  
(दास दासी) के और चतुष्पद (गाय, भैंस, घोड़ा.

बैल, ऊंट, बकरी आदि के प्रमाण का अतिक्रमण करना, कुप्य (बर्तन आदि घर की सामग्री) के प्रमाण का अतिक्रमण करना ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किये हों तो उनका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

अपरिग्रह :

परिग्रह सब पापों की जड़ है । यह भव-बन्धन का मुख्य कारण है । जब तक परिग्रह पर नियन्त्रण नहीं रखा जाएगा, तब तक दूसरे पाप भी कम नहीं होंगे । संग्रह-वृत्ति और पूँजीवादी मनोवृत्ति ही संसार में अशान्ति पैदा करती है । मनुष्य सोचता है कि धन, सम्पत्ति और सुख-भोग के साधनों का संग्रह करके मैं सुखी रहूँगा, परन्तु यह कोरी मिथ्याकल्पना है । 'वित्तेण ताणं न लभे' धन-वैभव से जीवन की रक्षा नहीं हो सकती । 'अर्थमनर्थं भावय नित्यम् ।' धन सचमुच अनर्थ ही है । **Our incomes are like shoes. If too small they gall and pinch us. If too large they make as to stumble and to triP.** गृहस्थ की आय उसके जूते के समान है । जूते अगर छोटे होते हैं, तो वे पेरों में छाले डाल देते हैं, और बड़े होते हैं, तो वे मनुष्य को गिरा देते हैं । इसी प्रकार धन की कमी गृहस्थ को परेशान करती है, और धन की अधिकता उसको विलासी बनाती है । अतः परिग्रह एक बहुत बड़ा पाप है, सब पापों का जनक है ।

पञ्चम अणुव्रत :

पञ्चम अणुव्रत है—स्थूल परिग्रह से विरत होना । गृहस्थजीवन में परिग्रह का सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता । परिग्रह का परिमाण

किना जा सकता है। परिग्रह के दो भेद हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्यपरिग्रह के दो भेद हैं—जड़ और चेतन। जड़ में वस्त्र, पात्र, सोना-चाँदी, सिक्का, मकान एवं खेत आदि का समावेश हो जाता है, और चेतन में मनुष्य पशु, पक्षी एवं वृक्ष आदि समस्त सजीव पदार्थों का ग्रहण हो जाता है।

उक्त व्रत के भी चार दोष हैं—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। व्रत को तोड़ने का संकल्प अतिक्रम, तोड़ने की तैयारी व्यतिक्रम, व्रत को एकदेश से खण्डित करना अतिचार और सर्वथा भंग करना अनाचार है।

आगे के सभी व्रतों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार एवं अनाचार का यही क्रम और यही अर्थ समझ लेना चाहिए।

**अतिचार :**

इस पञ्चम-स्थूल परिग्रह-परिमाण-व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने योग्य तो हैं, किन्तु आचरण के योग्य नहीं हैं। वे अतिचार इन प्रकार हैं :—

**क्षेत्र-वास्तु-प्रमाणातिक्रम :**

खेत आदि की खुली भूमि और घर आदि की ढँकी भूमि के विषय में जो मर्यादा की गई थी, उसका पूर्णतः तो नहीं, पर अंशरूप में उल्लंघन करना। जैसे किसी व्यक्ति के पास पहले चार खेत की मर्यादा थी, फिर चार और मिलने पर बीच की मेड़ को तोड़ कर एक कर लेना और चार की संख्या बनाए रखना। इसी प्रकार घर की मर्यादा के सम्बन्ध में भी समझ लेना।

**हिरण्य-सुवर्ण-प्रमाणातिक्रम :**

चाँदी-सोना अथवा चाँदी-सोने की बनी चीजों के विषय में जो मर्यादा की गई थी, उसका अंशरूप में उल्लंघन करना। मर्यादा से बाहर मिली इन वस्तुओं को अपने पास रखना नहीं चाहिए।

### धन्य-धान्य-प्रमाणातिक्रम :

सन्पत्ति और अनाज के विषय में जो मर्यादा की गई थी, उसका अंशरूप में उल्लंघन करना । मर्यादा से बाहर धन-धान्य मिले तो, उसे रखना नहीं चाहिए ।

### द्विपद-चतुष्पद-प्रमाणातिक्रम :

दास-दासी आदि मनुष्य और गाय, घोड़ा आदि पशु के विषय में जो मर्यादा की गई थी, उसका अंश रूप में उल्लंघन करना । प्रमाण से अधिक रखना ।

### कुप्य-प्रमाणातिक्रम :

‘कुप्य’ शब्द का अर्थ है—घर की सामग्री, अथवा पात्र (वर्तन) आदि वस्तु । पात्र आदि घर की सामग्री के विषय में जो मर्यादा की गई थी, उसका अंशरूप में उल्लंघन करना । प्रमाण से अधिक वस्तुओं का संग्रह करके रखना भी इस व्रत का दूषण है

: ३० :

## षष्ठ दिशायरिमाण-व्रत

मूल : छट्ठं दिसिब्वयं, उड्ढ-दिसाए जहापरिमाणां,  
अहो-दिसाए जहापरिमाणां, तिरिय-दिसाए  
जहापरिमाणां । एवं मए जहापरिमाणां कयं,  
तओ अइरित्तं सेच्छाए काएणां गंतूण पंच  
आसवासेवणास्स पच्चक्खाणां ।  
जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणां, न करेमि, न  
कारवेभि, मणसा, दयसा, कायसा ।

एयस्स छट्ठस्सँ दिसिब्वयस्स समणोवासएणं  
 पंच अइयारा जाणियब्बा, न समायरियब्बा,  
 तंजहा-उड्ढ-दिसिप्पमाणाइक्कमे, अहो-दिसि-  
 प्पमाणाइक्कमे, तिरिय-दिसिप्पमाणाइक्कमे,  
 खेत्त-बुड्ढी, सइ-अन्तरद्धा ।  
 जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा  
 मि दुक्कडं ।

अर्थ : षष्ठ दिशा परिमाण व्रत है—ऊर्ध्व-(ऊँची) दिशा में यथा-परिमाण, अधो (नीची) दिशा में यथा-परिमाण, तिर्यग् (तिरछी) दिशा में यथापरिमाण । इस प्रकार मैंने जो परिमाण किया है, उसके अति रिक्त अपनी इच्छा से शरीर के द्वारा जा कर पाँच आश्रव-सेवन का प्रत्याख्यान (त्याग) करना । जीवनपर्यन्त दो करण तीन योग से, न कहूँ, न कराऊँ, मन से वचन से, काय से । इस षष्ठ दिशा-परिमाण-व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने के योग्य हैं (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं । जैसे कि—उर्ध्वदिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना, अधोदिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना, तिर्यग्दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना, क्षेत्र (स्थान) सम्बन्धी स्वीकृति मर्यादा की वृद्धि करना, नियम का स्मरण न रहने से मर्यादा में वृद्धि करना । जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

ध्याख्या

ध्याख्या :

दिशा :

दिशा का अर्थ है—दिक् । दिशाएँ तीन हैं—ऊर्ध्वदिशा, अधो-दिशा और तिर्यग्दिशा । अपने से ऊपर की ओर को ऊर्ध्वदिशा, नीचे की ओर को अधोदिशा, तथा दोनों के बीच की तिरछीदिशा को तिर्यक्दिशा कहते हैं । तिर्यक्दिशा के चार भेद हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण । चार दिशाओं के चार कोणों को ईशान आदि चार विदिशा कहते हैं, ये भी तिर्यक्दिशा हैं । चार दिशा, चार विदिशा तथा ऊर्ध्व और अधः ; इन सबको मिला कर दश दिशाएँ होती हैं ।

षष्ठ दिशा-परिमाण-व्रत :

षष्ठ दिशा-परिमाण-व्रत हैं—ऊँची नीची और तिरछी दिशा का परिमाण करना । पापाचरण के लिए गमन-आगमन आदि क्षेत्र को विस्तृत करना साधक के लिए निषिद्ध है । राजा जिधर भी दिग्विजय को निकलते हैं, संहार मचा देते हैं । व्यापारी व्यापार को निकलते हैं, तो राष्ट्रों का शोषण कर लेते हैं अतः भगवान ने दिशा व्रत का विधान किया है, कार्यक्षेत्र की मर्यादा बाँधी जाती है, जिससे जीवन संयमित होता है ।

अतिचार :

षष्ठ दिशा-परिमाण-व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण के योग्य नहीं । वे इस प्रकार हैं—

ऊर्ध्वदिशा-परिमाणातिक्रम :

ऊर्ध्वदिशा में यातायात करने के लिए जो क्षेत्र मर्यादा में रखा है, उस क्षेत्र का भूल से उल्लंघन हो जाना ।

अधोदिशा-परिमाणातिक्रम :

नीची दिशा में जाने-आने के लिए जो क्षेत्र मर्यादा में रखा है, उस क्षेत्र का भूल से उल्लंघन हो जाना ।

**तिर्यग्-दिशा-परिमाणातिक्रम :**

तिरछी दिशा में जाने-आने के लिए जो क्षेत्र मर्यादा में रखा है, उस क्षेत्र का भूल से उल्लंघन हो जाना ।

**क्षेत्र-वृद्धि :**

एक दिशा की स्वीकृत मर्यादा में कमी कर के दूसरी में मिलाने को क्षेत्र की वृद्धि कहते हैं । यह व्रत का दूषण है ।

**स्मृति-भ्रंश :**

क्षेत्र की स्वीकृत मर्यादा को भूल कर मर्यादित क्षेत्रसे आगे बढ़ जाना, अथवा गृहीत मर्यादा का ही स्मरण न रहना स्मृति-भ्रंश है ।

: ३१ :

## सप्तम उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत

**मूल :** सत्तमे वए उपभोग-परिभोग-विहिं पञ्चकखा यमाणे, उल्लणियाविहिं, दंतवणविहिं, फल-विहिं, अब्भंगण-विहिं, उव्वट्टण-विहिं, मज्जण-विहिं, वत्थ-विहिं, विलेवण-विहिं, पुप्फ-विहिं, आभरण-विहिं, धूवण-विहिं, पेज्ज-विहिं, भक्खण-विहिं, ओदण-विहिं, सूव-विहिं, विगय-विहिं, साग-विहिं, महुर-विहिं जेमण-विहिं, पाणीय-विहिं, मुह-वास-विहिं, वाहण-विहिं, सयण-विहिं, उवाहण-विहिं, सच्चित्त-विहिं, दब्ब-विहिं करेमि ।

इच्छाईयां जहापरिमाणं कयं, तओ अइ-  
रित्तस्स उवभोग-परिभोगस्स पच्चक्खायां ।  
जाषज्जीवाए, एमविहं तिविहेयां. न करेमि,  
मणसा, वयसा, कायसा ।

सत्तमे उवभोग-परिभोगव्वए दुविहे पन्नते ।  
तंजहा—भोयणाओ य, कम्मओ य । तत्थ एं  
भोयणाओ समणोवासएयां पंच अइयारा  
जाणियव्वा, न समायरियव्वा ।

तं जहा—सचित्ताहारे, सचित्त-पडिबद्धाहारे,  
अप्पओलिओसहि-भक्खणया, दुप्पओलि-  
ओसहि-भक्खणया, तुच्छोसहि-भक्खणया ।  
जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : सप्तम उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत है—उपभोग-  
परिभोगविधि का प्रत्याख्यान करना । उल्लणिया  
(अङ्ग पौछने का वस्त्र) विधि (उसकी जाति एवं  
संख्या) की मर्यादा करना, दन्तवन (दतौन) विधि  
की (मर्यादा) करना, फलों की मर्यादा करना,  
अभ्यंगन (मालिश) की मर्यादा करना, उद्वर्तन  
(उबटन) की मर्यादा करना, मञ्जन (स्नान) की  
मर्यादा करना, वस्त्र की मर्यादा करना, विलेपन  
(लेपन या लेप) की मर्यादा करना, फूलों की मर्यादा  
करना, आभूषणों की मर्यादा करना, धूप की



मर्यादा करना, पेय (पीने योग्य पदार्थों) की मर्यादा करना, भक्ष्य (खाने योग्य पदार्थों) की मर्यादा करना, ओदन (चावल) की मर्यादा करना, सूप (दाल) की मर्यादा करना, विकृति (विगय) की मर्यादा करना, शाक (साग) की मर्यादा करना; मधुर (मीठे फल आदि) की मर्यादा करना, जेमन (भोजन) की मर्यादा करना, पानीय (जल) की मर्यादा करना, मुख-वास (पान सुपारी, इलायची आदि) की मर्यादा करना, वाहन (सवारी) की मर्यादा करना, शयन (शय्या आदि) की मर्यादा करना, उपानत् (जूतों) की मर्यादा करना, सचित्त पदार्थों की मर्यादा करना, द्रव्य (विविध पदार्थों) की मर्यादा करना ।

इत्यादि जो परिमाण (मर्यादा) किया, उससे अधिक उपभोग-परिभोग के सेवन का प्रत्याख्यान (त्याग) करना ।

जीवनपर्यन्त, एक करण तीन योग्य से, न करूं मन से, वचन से, काय से ।

सप्तम उपभोग-परिभोग-व्रत दो प्रकार का है । वह इस प्रकार से—भोजन से और कर्म (व्यापार) से । उसमें भोजन-सम्बन्धी व्रत के पाँच अतिचार श्रमणोपासक को जानने के योग्य है, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है ।

जैसे कि—त्यागी हुई सचित्त वस्तु का आहार (भोजन) करना, सचित्त-संयुक्त वस्तु का आहार करना अप्पओलि (कम पकी या अधपकी) औषधि (फली या धान्य आदि) का भक्षण (सेवन) करना,

दुप्पओलि (दुष्पक्व=देर में पकने वालो या अधिक पकी) औषधि (फली या धान्य आदि) का भक्षण (सेवन) करना । तुच्छ (असार) अर्थात् जिसमें डालने योग्य भाग अधिक हो और खाने योग्य कम हो, ऐसी ओषधि (फली या धान्य आदि) का भक्षण (सेवन) करना ।

जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उस का पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

: ३२ :

### पंचदश कर्मादान

मूल : कम्मओ णं समणोवासएणं पन्नरस कम्मा-  
दाणाइं, जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइ  
तं जहा—इंगाल-कम्मे, वण-कम्मे, साडी-  
कम्मे, भाडी-कम्मे, फोडी-कम्मे ।

दंत-वाणिज्जे, केस-वाणिज्जे, रस-वाणिज्जे-  
लक्ख-वाणिज्जे, विस-वाणिज्जे ।

जंतपीलणकम्मे, निल्लंञ्जण-कम्मे, दवग्गि-  
दावणया-कम्मे, सर-दह-तलाय-परिसोसणया-  
कम्मे, असइजण-पोसणया-कम्मे ।

जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्य मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : कर्म (व्यापार) से श्रमणोपासक को पन्द्रह कर्मादान (कर्म के आदान हेतु) जानने के योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं।

जैसे कि—अंभार (कोयलों) का कर्म (व्यापार) करना, वन (वन काटने) का कर्म (व्यापार) करना, साड़ी (गाड़ी बनाने) का कर्म करना, भाड़ी (भाड़े पर घोड़ा बैल आदि), चलाने का कर्म करना, फोडी (जमीन खोद कर खान आदि का कर्म (व्यापार) करना।

दांतों का व्यापार करना, केश, (केशवती=दासी आदि) का व्यापार करना, रस (मदिरा आदि) का व्यापार करना, लाख का व्यापार करना, विष का व्यापार करना।

यन्त्र (कोल्हू) से पीडन (पीलने आदि) का कर्म करना, खस्सी का कर्म करना वन में आग लगाने का कर्म करना, सरोवर, तालाब आदि के सुखाने का कर्म करना, वेश्या आदि कुलटा नारियों का पोषण करके उन से आजीविका चलाने का कर्म (व्यापार) करना। जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो।

व्याख्या :

उपभोग-परिभोग :

जीवन भोग से भरा हुआ है। जब तक जीवन है, भोग का सर्वथा त्याग तो नहीं किया जा सकता। हाँ, आसक्ति को कम करने के लिए भोग की मर्यादा की जा सकती है। जैन धर्म गृहस्थ के लिए भोग-शक्ति कम करने तथा उस के लिए उपभोग-परिभोग में आने वाले भोजन

पान, वस्त्र आदि पदार्थों के प्रकार एवं संख्या को मर्यादित करने का विधान करता है। यह मर्यादा एक-दो दिन आदि के रूप में सीमित काल तक अथवा जीवन पर्यन्त के लिये की जा सकती है। जैन साधना का शुद्ध उद्देश्य है—भोग से त्याग की ओर जाना। यदि एक दम पूर्ण त्याग न हो सके, तो धीरे-धीरे त्याग की ओर गति होती रहनी चाहिए। उपभोग एवं परिभोग के योग्य वस्तुओं की मर्यादा करना श्रावक का आवश्यक धर्म है। क्योंकि जीवन केवल भोग के लिए ही नहीं है, उससे परमार्थ की साधना भी करनी चाहिए।

### उपभोग-परिभोगपरिमाण-व्रत :

सप्तम उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रत है—उपभोग-परिभोग के योग्य वस्तुओं की मर्यादा करना। जो वस्तु एक बार भोगी जा चुकने के बाद फिर न भोगी जा सके—उस पदार्थ को भोगना, काम में लेना—उपभोग है। जैसे भोजन, पानी, अंग रचना एवं विलेपन आदि। जो वस्तु एक बार से अधिक बार काम में ली जा सके,—उस वस्तु को काम में लेना-परिभोग कहाता है। जैसे वस्त्र, अलङ्कार आदि।

### अतिचार :

उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत दो प्रकार का है—भोजन-सम्बन्धी और कर्म-सम्बन्धी। भोजनसम्बन्धी व्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रम-णोपासक को जानने के योग्य तो हैं, किन्तु आचरण के योग्य नहीं हैं। वे इस प्रकार हैं—

### सचित्ताहार :

सचित्त पदार्थ का आहार। जैसे-धान्य, बीज, जल एवं वनस्पति आदि। उक्त वस्तुएँ जो सचित्त-त्याग के रूप में त्याग कर दी गई हैं, उन्हें भूल से खाना।

### सचित्त-प्रतिबद्धाहार :

वस्तु तो अचित्त है, परन्तु उसको प्रत्याख्यात सचित्त वस्तु से सम्बन्धित कर के खाना, सचित्त प्रतिबद्ध आहार है।

अपक्व<sup>१</sup>. ओषधि-भक्षणता :

जो वस्तु पूर्ण पक्व नहीं है, और जिसे कच्ची भी नहीं कह सकते, ऐसी अधपकी चीज को खाना ।

दुष्पक्व<sup>२</sup>-ओषधिभक्षणता :

जो वस्तु पकी हुई तो है, परन्तु बहुत अधिक पक गई है, और पक कर विगड़ गई है, अथवा देर में पकने वाली ऐसी वस्तु को खाना ।

तुच्छ-ओषधिभक्षणता :

जिसमें क्षुधा-निवारक भाग कम है, और व्यर्थ का भाग अधिक है, ऐसी चीज को खाना । जैसे—मूँग आदि की कच्ची फली, जिससे पौष्टिक तत्व बहुत कम होता है ।

## पन्द्रह कर्मादान

व्याख्या :

१. अंगार-कर्म :

कोयले बना कर बेचना, उससे अपनी आजीविका चलाना । इस कार्य में षट्काय के जीवों की बहुत अधिक हिंसा होती है, ओर लाभ कम होता है । कोयले के लिए हरे-भरे वृक्ष काट डाले जाते हैं ।

१. जो वस्तु पूर्ण पक्व नहीं है,.....और जिसे कच्ची भी नहीं कह सकते, ऐसी अधपक्व चीज खाना.....!

— 'गृहस्थ-धर्म' भाग ३, पृ० ४५

अपक्व अर्थात् अरुप (थोड़ी पकी हुई वनस्पति का भक्षण करना ।

—पृ० घासीलालजी कृत उपासकदशांग टीका पृ० ३० ८

२. 'गृहस्थ-धर्म' भाग ३ पृ० ४६ ।

चिरकाल से अग्नि की आँच द्वारा सीझने वाली तूम्बी, चमले-की फली आदि का भक्षण करना ।

पूज्य घासीलालजी, उपासक...टी० पृ० २०६ ।

## २. वन-कर्म :

जङ्गल में से हरी लकड़ी, बांस आदि काटकर बेचना, और उस से अपनी आजीविका चलाना । इस में व्रस जीवों की भी बहुत बड़ी हिंसा होती है ।

## ३. साड़ी-कर्म :

बैल-गाड़ी अथवा घोड़ा-गाड़ी आदि द्वारा भाड़ा कमाना । अथवा गाड़ी आदि वाहन बनवा कर बेचना । किराये पर चलाना । इस में भी व्रस जीवों की बहुत हिंसा होती है ।

## ४. भाड़ी-कर्म :

जिस प्रकार अंगार कर्म और वन कर्म का परस्पर सम्बन्ध है, उसी प्रकार साड़ी कर्म और भाड़ी कर्म का भी आपस में सम्बन्ध है । साड़ी-कर्म में गाड़ी आदि वाहन मुख्य हैं और भाड़ी-कर्म में भाड़ा कमाने का दृष्टि से घोड़ों-ऊँट एवं बैल आदि पशु मुख्य हैं ।

## ५. फोड़ी-कर्म :

हल, कुदाली एवं सुरंग आदि से पृथ्वी को फोड़ना और उस में से निकले हुए पत्थर, मिट्टी एवं धातु आदि खनिज पदार्थ को बेचना स्फोट-कर्म है । अथवा भूमि खोदने का ठेका लेकर भूमि खोदना । उससे आजीविका करना । कृषि कर्म, फोड़ी-कर्म नहीं है । वह श्रावकत्व के लिए सर्वथा वर्जित भी नहीं है ।

## ६. दन्त-वाणिज्य :

दाँत का व्यापार करना । दाँत लेना, खरीदना, और खरीद कर उसकी अन्य वस्तुएँ बनाकर बेचना । इस में दाँत वाले पशु का वध होता है, अतः इसमें व्रसजीवों की बहुत बड़ी हिंसा होती है ।

## लक्ष-वाणिज्य :

लाख का व्यापार करना । लाख वृक्षों का रस है । लाख निकालने में व्रसजीवों की बहुत हिंसा होती है ।

### ८. रस-वाणिज्य :

रस का ब्यापार करना । यहाँ रस से मतलब मदिरा आदि से है । नशीले पदार्थों का ब्यापार नहीं करना चाहिए । मदिरा पान से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है । दूध एवं घी आदि का ब्यापार रस-वाणिज्य में नहीं है । क्योंकि ये पदार्थ तो सात्विक हैं, जीवन का पोषण करते हैं ।

### ९. विष-वाणिज्य :

विष का ब्यापार करना । संख्या अफीम, आदि जीवन नाशक पदार्थों की गणना विष में हैं । इसमें त्रसजीवों की हिंसा की सम्भावना बहुत अधिक है ।

### १०. केश-वाणिज्य :

केश का ब्यापार करना । यहाँ केशवाणिज्य से मतलब लक्षणा द्वारा केश वाली दासियों का खरीदना और बेचना है । इस प्रकार का व्यापार श्रावक के लिए वर्जित है ।

### ११. यन्त्रपीलन-कर्म :

यन्त्र द्वारा पीलने का कर्म करना । तिल का तेल और गन्ने आदि का रस पील कर बेचना । इसमें त्रसजीवों की हिंसा की सम्भावना है ।

### १२. निल्लंछण-कर्म :

पशुओं को खस्सी करके आजीविका करना । इस व्यवसाय से पशुओं को भयंकर वेदना होती है, और साथ में उनकी नस्ल भी खराब होती है ।

### १३. दवाग्नि-दापनिकाकर्म :

वन दहन करना । भूमि को साफ करने में श्रम न करना पड़े, इसलिए वन में आग लगा देना । इसमें त्रसजीवों की बहुत अधिक हिंसा होती है ।

### १४, सर-हृद-तडाग-शोषण-कर्म :

सरोवर, तालाब एवं नदी आदि के जल का सुखाना । इस से जल में रहने वाले त्रस जीवों की बहुत अधिक हिंसा होती है ।

### १५, असती-जन-पोषण-कर्म :

कुलटा स्त्रियों को रख कर, उनका पोषण कर के उन के द्वारा आजीविका चनाना । वेश्यावृत्ति करवाना । यह धंधा महान् पापपूर्ण है । अतः वर्जित है ।

पन्द्रह कर्मादानों में दश कर्म हैं, और पांच चाण्डाल्य हैं । श्रावक के लिए ये सब के सब त्याज्य है । श्रावकों को महान् पाप से, महा-रम्म से बचाने के लिए तथा उन्हें सभ्य सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कराने के लिए भगवान् ने कर्मादानों को निषिद्ध कहा है । पन्द्रह कर्मादान का त्याग श्रावक के मूल-व्रतों में गुण उत्पन्न करने वाला है, त्याग बुद्धि को निर्मल बनाने वाला और चित्त को समाधि में रखने वाला है ।

ये पन्द्रह कर्मादान सप्तवें व्रत के अतिचारों में हैं । सातवें व्रत के बीस अतिचार हैं, जिन में पांच तो भोजन सम्बन्धी हैं, और पन्द्रह धंधा सम्बन्धी हैं । श्रावक को ये जानने के योग्य तो हैं । किन्तु आचरण के योग्य नहीं हैं ।

## छब्बीस बोल की मर्यादा

व्याख्या :

### १, उल्लणिया-विधि-परिमाण :

प्रातः काल जब मनुष्य उठ कर, शौच आदि से निवृत्त हो कर, अपने हाथ-मुँह को धोता है, तब पौँछने के लिए बस्त्र-खण्ड की आवश्यकता पड़ती है । इस प्रकार के बस्त्र की मर्यादा करना ।

### २. दन्त-धावनविधि-परिमाण :

रात में सो कर उठे हुए मनुष्य के मुख में सांस-उसांस के आने-जाने



से मल संचित हो जाता है, उसको साफ करने के लिए दन्त धावन किया जाता है। दातुन किया जाता है। दातुन के विषय में मर्यादा करना।

### ३. फल-विधि-परिमाण :

मस्तिष्क और बालों को स्वच्छ तथा शीतल करने के लिए प्राचीन युग में आंवले आदि फलों का प्रयोग किया जाता था। आंवला एवं त्रिफला आदि की मर्यादा करना।

### ४. अभ्यंगन-विधि-परिमाण :

त्वचा (चमड़ी) आदि के विकारों को दूर करने के लिए तथा शरीर को बलवान रखने के लिए तैल से शरीर की मालिश करना, अभ्यंगन कहा जाता है। मालिश करने में प्रयुक्त होने वाले तैल की मर्यादा करना।

### ५. उबटन-विधि-परिमाण :

शरीर पर लगी तैल की चिकनाहट को दूर करने के लिए, मैल को दूर करने के लिए तथा शरीर में स्फूर्ति लाने के लिए, प्राचीन काल में उबटन लगाया जाता था, आज के युग में साबुन का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के उबटन की मर्यादा करना।

### ६. मञ्जन-विधि-परिमाण :

अभ्यंगन तथा उबटन करने के बाद में स्नान किया जाता था। स्नान के पानी की और स्नान की मर्यादा करना।

### ७. वस्त्र-विधि-परिमाण :

प्राचीन युग में मनुष्य बहुत कम वस्त्रों का उपयोग किया करता था। एक अधोवस्त्र और दूसरा उत्तरीय, बस, पुरुष के दो ही वस्त्र होते थे। और स्त्री के कंचुकी-सहित तीन। आज तो वस्त्रों की कोई सीमा नहीं रही है। वस्त्र स्वच्छ तो हों, परन्तु विकार पैदा करने वाले न हों। वस्त्रों की मर्यादा करना।

#### ८. विलेपन-विधि-परिमाण :

शरीर को शीतल तथा सुशोभित करने के लिए चन्दन, केशर एवं कुंकुम आदि के विलेपन का प्रयोग किया जाता था और आज भी पाउडर आदि का प्रयोग होता है। इस प्रकार के पदार्थों की मर्यादा करना।

#### ९. पुष्प-विधि-परिमाण :

फूलों के प्रति मनुष्य का बड़ा ही आकर्षण रहा है। वह माला बना कर पहनता है, एवं गुलदस्ते सजा कर रखता है। अस्तु, कौन से फूल लेना और कौन-से न लेना और वह भी किस रूप में तथा कितनी मात्रा में लेना, इस प्रकार पुष्प की मर्यादा करना।

#### १०. आभरण-विधि-परिमाण :

प्राचीन युग में स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने शरीर को अलंकृत करने के लिए आभूषणों का प्रयोग करते थे, और आज भी करते हैं। इस प्रकार आभूषणों की मर्यादा करना।

#### ११. घूप-विधि-परिमाण :

घर में, स्वास्थ्य की दृष्टि से वायु आदि की शुद्धि के लिए घूप एवं अगरबत्ती आदि का प्रयोग किया जाता है। ऐसे पदार्थों की मर्यादा करना।

#### १२. पेय-विधि-परिमाण :

पीने योग्य पदार्थों को पेय कहते हैं। अतः दूध, चाय एवं रस आदि पदार्थों की मर्यादा करना।

#### १३. भक्षण-विधि-परिमाण :

खाने योग्य पदार्थों को भक्षण कहा जाता है। अतः मिष्ठान एवं पाक आदि पदार्थों की मर्यादा करना।

#### १४. ओदन-विधि-परिमाण :

ओदन चावल (भात) को कहते हैं। वे अनेक प्रकार के होते हैं। उनकी मर्यादा करना।

### १५. सूप-विधि-परिमाण :

सूप का अर्थ है - दाल । दाल अनेक प्रकार की है मूंग, उड़द आदि की । उनकी मर्यादा करना ।

### १६. विगय-विधि-परिमाण :

दुग्ध, दहि, घृत, तेल एवं मिठाई आदि पदार्थ विकार उत्पन्न करने के कारण विकृत ; अर्थात् विगय कहलाते हैं । ये सामान्य विगय हैं । मधु और मैक्खन विशेष विगय है । मद्य और मांस महाविगय हैं । श्रावक के लिए मदिरा और मांस का तो मूलतः ही निषेध होता है । शेष विकृतियों की मर्यादा करनी चाहिए ।

### १७. शाक-विधि-परिमाण :

भोजन के साथ व्यञ्जन-रूप में खाए जाते हैं, वे शाक होते हैं । उनकी मर्यादा करना ।

### १८. मधुर-विधि-परिमाण :

आम, जामुन, केला एवं अनार आदि हरे फलों को और दाख, बादाम एवं पिश्ता आदि सूखे फलों को मधुर कहते हैं । उनकी मर्यादा करना ।

### १९. जेमन-विधि-परिमाण :

जो पदार्थ भोजन के रूप में खाए जाते हैं, उनको जेमन कहते हैं । रोटा, बाटीं पूरी आदि । उनकी मर्यादा करना ।

### २०. पानी-विधि-परिमाण :

खारापानी, मीठा पानी, गरम पानी, और ठंडा पानी, नदी का पानी आदि अनेक प्रकार का जल है । उनकी मर्यादा करना ।

### २१. मुख-वास विधि-परिमाण :

इलायची, पान एवं सुपारी आदि पदार्थों को मुख-वास कहते हैं । ये भोजन के बाद स्वाद के लिए खाए जाते हैं । इस प्रकार के पदार्थों की मर्यादा करना ।

### २२. उपानत्विधि-परिमाण :

पैर में पहनने के घोरयें जूते, खड़ाऊँ स्लीपर आदि को उपानत् कहते हैं । उनकी मर्यादा करना ।

### २३. वाहन-विधि-परिमाण

वाहन का अर्थ है—सवारी । घोड़ा, उँट, हाथी, रथ, बैलगाड़ी, रेल, मोटर एवं साइकिल आदि । इनकी मर्यादा करना ।

### २४. शयनविधि-परिमाण

सोने के प्रयोग में आने वाले पदार्थ शयन में आ जाते हैं; खाट, पाट, आसन-विछौना, आदि, उपलक्षण से कुर्सी, मेज आदि भी । उनकी मर्यादा करना ।

### २५. सचित्त-विधि-परिमाण :

सचित्त पदार्थों का अधिक-से-अधिक त्याग करना, साधक जीवन का लक्ष्य है । परन्तु सम्पूर्ण रूप में जब तक सचित्त पदार्थों का त्याग न हो सके, तो उनकी मर्यादा करना । इसको सचित्त की मर्यादा करना ।

### २६. द्रव्य-विधि-परिमाण :

संसार में उपभोग्य पदार्थ अनन्त है । मनुष्य अपने सीमित जीवन में उन सभी का उपभोग नहीं कर सकता । ऐसा होना सम्भवित भी नहीं है । अतः द्रव्यों (पदार्थों) की मर्यादा करनी चाहिए । इससे जीवन संयत बनता है । पूर्वोक्त २५ बोल के अतिरिक्त शेष सभी पदार्थ उक्त २६ वें बोल में आ जाते हैं ।

छब्बीस बोलों में पहले से ग्याह तक के बोल शरीर को स्वच्छ, स्वस्थ एवं सुशोभित करने वाले पदार्थों से सम्बन्धित हैं । बीच के दश खाने-पीने में आने वाले पदार्थों से सम्बन्धित हैं, और अन्त के शेष बोल शरीर आदि की रक्षा करने वाले पदार्थों से सम्बन्धित हैं ।

( ३३ )

**अष्टम अनर्थ-दण्ड-विरमण-व्रत**

**मूल :** अट्टमं वयं अणट्ट-वेरमणं । से य अणट्ट-  
दंडे चउव्विहे पन्नत्ते ।

तं जहा—अवज्झाणाचरिए, पमायाचरिए,  
हिंसप्पयाणे, पाव-कम्मोवएसे ।

इच्चेवमाइयस्स अणट्टदंडासेवणस्स पच्च-  
क्खाणं । जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणं, न  
करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा,  
कायसा ।

एयस्स अट्टमस्स अणट्टदंड-वेरमणस्स समणो-  
वासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न  
समायरियव्वा ।

तं जहा—कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए,  
संजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोगाइरित्ते ।  
जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स  
मिच्छामि दुक्कडं ।

**अर्थ :** अष्टमव्रत है—अनर्थदण्ड से विरत होना । वह  
अनर्थ-दण्ड चार प्रकार का है ।

जैसे कि—अपध्यान (बुरा चिन्तन) आचरित करना,  
प्रमाद का आचरण करना, हिंसाकारी शस्त्र आदि  
का बनाना एवं देना, पापकर्म का उपदेश करना ।

इत्यादि अनर्थदण्ड के सेवन का प्रत्याख्यान (त्याग) करना ।

जीवनपर्यन्त, दो करण, तीन योग्य से न कहूँ, न कराऊँ, मन से, वचन से, काय से ।

इस अष्टम अनर्थ-दण्डविरमण-व्रत के श्रमणोपासक को पांच अतिचार जानने के योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है ।

जैसे कि—काम-उद्दीपक-कथा करना, भाण्ड की तरह कुचेष्टा करना, बिना प्रयोजन के अधिक बोलना, अधिकरण (हिंसाकारी साधन) का संग्रह करना, उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का मर्यादा से अधिक रखना ।

जो मैंने दिवससम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उस का पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

अनर्थदण्ड

मनुष्य यदि अपने जीवन को विवेक-शून्य एवं प्रमत्त रखता है, तो बिना प्रयोजन भी वह हिंसा आदि कर बैठता है । मन, वचन और काय को सदा संयत रखना चाहिए । प्रत्येक क्रिया विवेक तथा यतना से करनी चाहिए । अप्राप्त भोगों के लिए मन में लालसा रखना । प्राप्त भोगों की रक्षा के लिए चिन्ता करता । बुरे विचार एवं बुरे संकल्प रखना । पापकार्य के लिए किसी को प्रेरणा देना, परामर्श देना । हाथ एवं मुख आदि से अभद्र चेष्टाएँ करना । कामभोगसम्बन्धी वार्तालाप में रस लेना, बात-बात में गाली-गलौज करना । व्यर्थ में हिंसाकारक शस्त्रों का संग्रह करना । आवश्यकता से अधिक भोग-सामग्री एकत्र करना । तेल एवं घृत आदि के पात्र बिना ढके खुले में रखना । यह सब अनर्थ-दण्ड है ।

बिना प्रयोजन की हिंसा है। साधक को उक्त सब अनर्थ-दण्डों से निवृत्त रहना चाहिए।

**अनर्थ-दण्डविरमण-व्रत :**

अष्टम व्रत है—अनर्थदण्ड से विरत होना। वह अनर्थ-दण्ड चार प्रकार का है। जैसे कि—

**अपध्यानाचरित :**

जो ध्यान अप्रशस्त है, बुरा है—वह अपध्यान है। ध्यान का अर्थ है—किसी भी प्रकार के विचारों में-चित्त की एकाग्रता। व्यर्थ के बुरे संकल्पों में चित्त को एकाग्र करने से जो अनर्थ-दण्ड होता है, उसको अपध्यानाचरित अनर्थदण्ड कहते हैं। अपध्यान के दो भेद हैं—आर्त-ध्यान और रौद्रध्यान।

**प्रमादाचरित :**

प्रमाद का आचरण करना। प्रमाद से आत्मा का पतन होता है। प्रमाद पांच है—मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। ये पांच प्रमाद अनर्थ-दण्डरूप हैं। अमर्यादितरूप निद्रा भी साधक के लिए त्याज्य है।

**हिंस्र-प्रदान :**

हिंसा में सहायक होना। जितसे हिंसा होती है, ऐसे अस्त्र, शस्त्र आग, विष आदि हिंसा के साधन अन्य विवेकहीन व्यक्तियों को दे देना, हिंसा में सहायक होना है।

**पापोपदेश :**

पापकर्म का उपदेश देना है। जिस उपदेश से पाप-कर्म में प्रवृत्ति हो, पाप-कर्म की अभिवृद्धि हो, उपदेश सुनने वाला पाप-कर्म करने लगे, वह उपदेश अनर्थ-दण्डरूप है।

**अतिचार :**

अनर्थ-दण्ड-विरमणव्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को

जानने योग्य तो है, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है। वे इस प्रकार से हैं—

**कन्दर्प :**

कामवासना प्रवृत्त करने वाले तथा मोह उत्पन्न करने वाले शब्दों को हास्य में या व्यङ्ग्य में, दूसरे के लिए उपयोग करना ।

**कौतुक्य :**

आँख, नाक, मँह, भृकुटि आदि अपने अंगों को विकृत बना कर भाण्ड एवं विदूषक की भाँति चेष्टाएँ करना ।

**मौख्य :**

बिना प्रयोजन के अधिक बोलना, अनर्गल बातें करना, व्यर्थ की बकवास करना और किसी की निन्दा-चुगली करना ।

**संयुक्ताधिकरण :**

कूटने और पीसने आदि के काम में आने वाले घर के साधनों का जैसे—ऊखल, मूसल, चक्की एवं लोढ़ी आदि वस्तुओं का—अधिक तथा निष्प्रयोजन संग्रह करके रखना ।

**उपभोग-परिभोगातिरिक्त :**

उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत स्वीकार करते हुए, जो पदार्थ मर्यादा में रखे हैं, उनमें अत्यन्त आसक्त रहना, उनका बार-बार उपयोग करना उनका उपयोग स्वाद के लिए करना । जैसे भूख न होने पर भी स्वाद के लिए खाना । शरीर रक्षा के लिए नहीं, मौज-शौक के लिए वस्त्र पहनना आदि ।

: ३४ :

## नवम सामायिक-व्रत

**मूल :** नवमं सामाइयव्यं सावज्ज-जोग-वेरमण-  
रुवं । जावनियमं पज्जुवासामि । दुविहं



तिविहेणां, न करेमि न कारवेमि, मणसा,  
वयसा, कायसा ।

एयस्स नवमस्स सामाइव्वयस्स समणोवास-  
एणां पंच अइयारा जाणियव्वा, न समाय-  
रियव्वा ।

तं जहा—मण-दुप्पणिहारो, वय-दुप्पणिहारो-  
काय-दुप्पणिहारो, सामायस्स सइ अकरणया  
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया ।

जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ।

अर्थ : नवम सामायिक व्रत है—सावद्ययोग से विरत होना ।  
जब तक नियम में रह कर पर्युपासना करूँ, तब तक  
दो करण तीन योग से, (पापकर्म) न करूँ, न कराऊँ  
मन से, वचन से, काय से ।

इस नवम सामायिक व्रत के श्रमणोपासक को पांच  
अतिचार जानने के योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के  
योग्य नहीं है ।

जैसे कि—मन से दुष्प्रणिधान (सावद्यव्यापार का  
चिन्तन) करना, वचन से सावद्यव्यापार-सम्बन्धी  
भाषण करना, काय से सावद्यव्यापार करना,  
सामायिक करने की स्मृति न रखना, सामायिक  
अव्यवस्थित रूप में करना, (समय से पूर्व ही पार  
लेना आदि, या समय पर न करना आदि) ।

जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

सामायिक :

जैन-धर्म की साधना में सामायिक का बड़ा महत्व है । सामायिक का अर्थ है—समभाव की साधना । संसार के प्रपंचों से अलग हो कर, राग-द्वेष के द्वन्द्वों से हट कर, जीवन को निरवद्य, निष्पाप एवं पवित्र बनाना ही समत्व-भाव है, समताभाव है । परन्तु गृहस्थ जीवन में समभाव की साधना कितनी और कैसी हो सकती है ? यह एक प्रश्न है । गृहस्थ—एक गृहस्थ है, वह साधु नहीं है, जो जीवनभर के लिए सब पाप-व्यापारों का पूर्ण रूप से परित्याग करके, पूर्ण समभाव का पवित्र जीवन बिता सके । अतः उसे प्रतिदिन कम से कम अमुक मर्यादा के साथ एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) के लिए तो सामायिक व्रत धारण करना ही चाहिए । गृहस्थ की सामायिक-साधु की पूर्ण सामायिक के अभ्यास की भूमिका है । वह दो घड़ी का आध्यात्मिक स्नान है। जो जीवन को निष्पाप, निष्कलंक एवं पवित्र बनाता है ।

सामायिक-व्रत :

नवम सामायिक व्रत है—सावद्ययोग से विरत होना । सामायिक व्रत एक अध्यात्मसाधना है, परन्तु उसे करने से पूर्व शुद्धि की आवश्यकता है । शुद्धि चार प्रकार की होती है, जो इस प्रकार से है—

द्रव्य-शुद्धि :

सामायिक के लिए जो उपकरण हैं; जैसे—वस्त्र, पुस्तक, रजोहरणी, मुखवस्त्रिका एवं आनस आदि—उन सभी का द्रशु एवं उपयोगी ना हो आवश्यक है ।

**क्षेत्र-शुद्धि :**

जहाँ सामायिक की जाती है, उस स्थान को क्षेत्र कहते हैं। शान्त वातावरण और एकान्तरूप में क्षेत्र की शुद्धि भी आवश्यक है।

**काल-शुद्धि :**

सामायिक प्रातःकाल आदि ऐसे शान्ति के समय में करनी चाहिए, ताकि वह अनुद्वेग, शान्त और निर्विघ्नता के साथ हो सके। इसका भी विचार रखना चाहिए कि सामायिक के काल में ही सामायिक की जाए

**भाव-शुद्धि :**

सामायिक करते समय भाव-शुद्धि भी आवश्यक है। मन की पवित्रता एवं शुभ संकल्प रखना भाव-शुद्धि है।

**अतिचार**

सामायिकव्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने योग्य तो हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं। वे इस प्रकार हैं—

**मनो-दुष्प्रणिधान :**

मन में बुरे संकल्प विकल्प करना। मन को सामायिक में न लगा कर सांसारिक कार्य में लगाना।

**वचन-दुष्प्रणिधान :**

सामायिक में कटु, कठोर, निष्ठुर, असभ्य तथा सावद्य वचन बोलना, किसी की निन्दा करना, आदि।

**क्वम्-दुष्प्रणिधान :**

सामायिक में चंचलता रखना। शरीर से कुचेष्टा करना, बिना कारण शरीर को फँलाना और समेटना अन्य किसी प्रकार की सावद्य चेष्टा करना, आदि :

**सामायिक-स्मृतिभ्रंस :**

'मैंने सामायिककी है', इसबात को ही भूल जाना, सामायिक कब

ली और वह कब पूरी होगी, इस बात का ध्यान न रखना, अथवा समय पर सामायिक करना ही भूल जाना ।

**सामायिकानवस्थिति :**

सामायिक की साधना से ऊबना, सामायिक का काल पूर्ण हुए बिना ही सामायिक पार लेना । सामायिक के प्रति आदर-बुद्धि न रखना, आदि ।

: ३७ :

## दशम देशावकाशिक-व्रत

**मूलः**

दसमं देसावगासियव्वयं दिण-मज्जे पच्चूस-  
कालाओ आरब्भ पुव्वादिसु छस्सु दिसासु  
जावइयं परिमाणं कयं, तओ अइरिचं सेच्छाए  
काएण गंतूणं, अन्नो वा पहिऊण, पंच  
आसवा-सेवणस्य पच्चक्खाणं ।

जाव अहोरत्तं, दुविहं तिविहेणं- न करेमि-  
न कारवेमि- मणसा- वयसा- कायसा ।  
अह य छस्सु दिसासु जावइयं परिमाणं कयं-  
तम्मज्जे वि जावइयाणं दब्बाणं परिमाणं  
कयं- तओ अइरिचस्स उवभोग-परिभोगस्स  
पच्चक्खाणं ।

जाव अहोरत्तं- एगविहं तिविहेणं- न करेमि  
मणसा- वयसा- कायसा ।

एयस्य दसमस्य देसावगासियव्वयस्स  
समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा-  
न समायरियव्वा ।

तं जहा—आणवणप्पओगे- पेसवणप्पओगे-  
सहाणुवाए, रूवाणुवाए, वहियापुग्गल प-  
क्खेवे । जो मे देवसिओ अइयारो कओ-  
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थः

दशम देशावकाशिक व्रत है—दिन में प्रातःकाल से ले कर पूर्वादि छह दिशाओं में जितनी भूमि का परिमाण (मर्यादा) किया, उसके अतिरिक्त अपनी इच्छा से स्वयं शरीर से जा कर, अथवा अन्य को भेज कर, पाँच आश्रव के सेवन का प्रत्याख्यान (त्याग) करना ।

यावत् दिन-रात-पर्यन्त, दो करण तीन योग से, (आश्रव-सेवन) न करूँ, न कराऊँ, मन से, वचन से, काय से । अथवा

छह दिशाओं में जितना परिमाण किया, उस में भी जितने द्रव्यों का परिमाण किया, उसके अतिरिक्त उपभोग-परिभोग का प्रत्याख्यान (त्याग) करना ।

यावत् दिन-रात तक, एक करण तीन योग से, (हिंसा, असत्य आदि आश्रव-सेवन) न करूँ, मन से, वचन से, काय से ।

इस दशम देशावकाशिक-व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, (किन्तु) आचरण करने के योग्य नहीं है। जैसे कि—मर्यादित क्षेत्र से बाहर की वस्तु मंगाना, मर्यादित क्षेत्र से बाहर वस्तु भेजना, शब्द के द्वारा मनोगत भाव का ज्ञान कराना, रूप दिखा कर मनोगत भाव प्रकट करना, कंकर आदि पुद्गल (वस्तु) फेंक कर मनोगत भाव प्रकट करना। जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो।

**व्याख्या**

**देशावकाशिक :**

परिग्रहपरिमाण-व्रत, दिशापरिमाण-व्रत और उपभोगपरिभोग-परिमाणव्रत की जीवन भर की प्रतिज्ञा को और अधिक व्यापक एवं विराट् बनाने के लिए देशावकाशिक-व्रत ग्रहण किया जाता है। दिशा-परिमाण-व्रत में गमन-आगमन का क्षेत्र जीवन पर्यन्त के लिए सीमित एवं मर्यादित किया जाता है। प्रस्तुत व्रत में उस सीमित क्षेत्र को एक दो दिन आदि के लिए और अधिक सीमित कर लिया जाता है। देशावकाशिक-व्रत की साधना में क्षेत्र-सीमा का संकोच होता है, साथ में उपभोग्य सामग्री की सीमा भी सकुचित हो जाती है। देशावकाशिक-व्रत की प्रतिज्ञा हर रोज की जाती है।

**देशावकाशिक-व्रत :**

दशम देशावकाशिक-व्रत है—प्रतिदिन क्षेत्र आदि की मर्यादा को कम करते रहता। जैन-धर्म त्याग-लक्षी है। जीवन को अधिक से अधिक त्याग की ओर झुकाना ही साधना का मुख्य ध्येय है। प्रस्तुत व्रत में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

**अतिचार :**

देशावकाशिक व्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने योग्य तो हैं. (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है। वे इस प्रकार हैं—  
**आनयन-प्रयोग :**

मर्यादित भूमि से बाहर रहे हुए रुचितादि पदार्थ किसी को भेज कर अन्दर में मँगवाना, अथवा समाचार मँगवाना।

**प्रेष्य-प्रयोग :**

मर्यादा से बाहर की भूमि में अन्दर में से किसी दूसरे के द्वारा कोई पदार्थ अथवा सन्देश भेजना।

**शब्दानुपात :**

मर्यादा के बाहर की भूमि से सम्बन्धित कार्य के आ पड़ने पर, मर्यादा की भूमि में ही रह कर शब्द के द्वारा, अर्थात् खंखार कर, चुटकी आदि बजा कर, दूसरे को अपना भाव प्रकट कर देना, जिससे वह व्यक्ति विना कहे ही संकेतानुसार कार्य कर सके। यह उक्त व्रत का दूषण है।

**रूपानुपात :**

मर्यादा में रखी हुई भूमि के बाहर का यदि कोई कार्य आ पड़े, तो शरीर की चेष्टा करके, आँख का इशारा करके या शरीर के अन्य किसी अङ्ग के संकेत से दूसरे व्यक्ति को अपना भाव प्रकट करके, विना कहे ही उससे काम करा लेना।

**बाह्य पुद्गल-प्रक्षेप :**

मर्यादित भूमि के बाहर का कार्य आ जाने पर कंकड़ मार कर, ढेला फेंक कर, अथवा अन्य कोई वस्तु फेंक कर दूसरे को अपना संकेत करना, आदि।

## श्रावक के चौदह नियम

श्रमण-संस्कृति का मूल लक्ष्य है—भोग से त्याग की ओर जाना । श्रावक के जीवन में विवेक का प्रकाश होना चाहिए । विना विवेक के हेय एवं उपादेय का बोध नहीं हो सकता । क्या छोड़ने योग्य है, और क्या ग्रहण करने योग्य है ? यह जानना परम आवश्यक है । विवेकी श्रावक की सदा यह भावना रहा करती है, कि मैं आरम्भ और परिग्रह का त्याग करके असंयम से संयम की ओर बढ़ता रहूँ । श्रावक के लिए प्रतिदिन चौदह नियम चिन्तन करने का जो परम्परा है वह इस देशावकाशिक व्रत का ही एक रूप है । श्रावक के चौदह नियम इस प्रकार हैं—

### १. सच्चित्त :

पृथ्वी, जल, वनस्पति, अग्नि और फल-फूल, धान, बीज आदि सच्चित्त वस्तुओं का यथाशक्ति त्याग करना ।

### २. द्रव्य :

जो वस्तुएँ स्वाद के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से तैयार की जाती हैं, उनके सम्बन्ध में यह परिमाण करे, कि आज मैं इतने द्रव्यों से अधिक द्रव्य उपभोग में न लूँगा ।

### ३. विगय :

शरीर में विकृति एवं विकार को उत्पन्न करने वाले पदार्थों को विगय कहा गया है । जैसे—दुग्ध, दधि, घृत, तैल तथा मिठाई । उक्त पदार्थों का यथाशक्ति त्याग करे, अथवा मर्यादा करे, कि इससे अधिक न लूँगा । ये पांच सामान्य विगय हैं, और मधु एवं मक्खन—ये दो विशेष विगय हैं । इन विशेष विगयों का बिना कारण के उपभोग करने का त्याग करे, और कारणवश उपभोग करने की मर्यादा करे । मदिरा एवं मांस—ये दो महाविगय हैं । श्रावक को इन दोनों का जीवन भर के लिए सर्वथा त्याग करना चाहिए ।



## ४. पन्नी :

‘पन्नी’ शब्द प्राकृत का है। इसका अर्थ है—उपानत् अर्थात् जूते, बूट, खड़ाऊँ तथा मौजे भी पन्नी में आते हैं, इनका त्याग करे, अथवा मर्यादा करे।

## ५. ताम्बूल :

ताम्बूल का अर्थ है—पान। भोजन के बाद में मुखशुद्धि के लिए पान खाया जाता है। पान की, तथा उपलक्षण से सुपारी एवं इलायची आदी मुखवास की मर्यादा करे।

## ६. वस्त्र :

पहनने, ओढ़ने तथा बिछाने के कपड़ों की मर्यादा करे।

## ७. कुसुम :

फूल, फूलों की माला और इतर-तेल आदि सुगन्धित पदार्थों की मर्यादा करे।

## ८. वाहन :

वाहन का अर्थ है—सवारी। गज, अश्व, ऊँट, गाड़ी, तांगा, रिक्शा, मोटर, रेल, जहाज, नाव एवं वायुयान आदि सवारी के साधनों का यथाशक्ति त्याग करे या मर्यादा करे।

## ९. शयन :

शय्या, पलंग, खाट, बिस्तर, मेज, बेंच और कुर्सी आदि की मर्यादा करे।

## १०. विलेपन :

शरीर पर लेप करने योग्य पदार्थों का—जैसे, केशर, कस्तूरी अगर-तगर, चन्दन, साबुन और तेल आदि—त्याग करे, या मर्यादा करे।

### ११. ब्रह्मचर्य :

स्थूल ब्रह्मचर्य—स्वदार-सन्तोषरूप एवं परदार-वर्जनरूप व्रत स्वीकार करते समय जो अमुक दिनों की मर्यादा रखी है, उसका भी यथाशक्ति त्याग करे, या उसमें संकोच करे ।

### १२. दिशा-मर्यादा :

दिशापरिमाण-व्रत स्वीकार करते समय गमन एवं अगमन के लिए जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उस क्षेत्र को और अधिक मर्यादित करे, संकोच करे ।

### १३. स्नान

श्रावक शरीर-शुद्धि के लिए स्नान करता है । वह स्नान दो प्रकार का है—देशस्नान एवं सर्वस्नान । शरीर के कुछ भाग को धोना—जैसे हाथ धोना, पैर धोना एवं मुँह धोना—यह देशस्नान है । शरीर के समस्त भाग को धोना सर्वस्नान है । स्नान की मर्यादा करना, अथवा सर्वथा त्याग कर देना ।

### १४. भक्त :

भोजन-पानी के सम्बन्ध में भी मर्यादा करे, कि आज मैं इतने से अधिक न खाऊंगा, न पीऊंगा ।

उक्त चौदह नियम श्रावक के दैनिक कर्तव्यरूप में हैं । यथा-शक्ति उक्त पदार्थों का त्याग करना, अथवा त्याग न कर सके तो मर्यादा करना । चौदह नियमों का पालन श्रावक अपनी त्यागशक्ति को विकसित करने के लिए ही करता है । वह इन नियमों का पालन कर के धीरे, धीरे भोग से त्याग की ओर बढ़ता है ।

: ३८ :

## एकादश पौषध-व्रत

मूल : एक्कारसमं पोसहोववासध्वयं। असण-पाण-  
खाइम-साइम-पच्चक्खाणं ।

अंबंभ-पच्चकखाणां, मणि-सुवण्णाइ-पच्च-  
कखाणां, एंसताला-वण्णग-विलेवणाइ-पच्च-  
कखा, ६६-मुसलाइ-सावज्ज-जोग-पच्च-  
कखाणां ।

जाव अहोरत्तं, पज्जुवासामि । दुविहं तिवि-  
हेणां, न करेमि न कारवेमि, मणसा,  
वयसा, कायसा ।

एयस्स एककारसमस्स पोसहोववासव्वयस्स  
समणोवासएणां पंच अइयारा जाणियव्वा  
न समायरियव्वा ।

तं जहा-अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-  
सिच्चजासंधारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय  
सिच्चजासंधारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय  
उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय - दुप्प-  
मज्जिय उच्चार-पासावणभूमि, पोसहोववा-  
सस्स सम्मं अण्णुपालणया ।

जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स  
मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : ग्यारहवां पौषध या पौषधोपवास-व्रत है—अशन  
(भोजन) पान (पानी), खादिम (खाने योग्य),  
स्वादिम (स्वाद योग्य) वस्तुओं का प्रत्याख्यान  
(त्याग) करना ।

अब्रह्मचर्य (मैथुन) सेवन का त्याग करना, मणि (रत्न)सोना आदि का त्याग करना, माला, रंग, विलेपन आदि का त्याग करना, शस्त्र मुसल आदि सावद्य व्यापार का त्याग करना ।

यावत् अहोरात्र (दिन-रात तक) पौ का धषतव्र-पालन करना । दो करण तीन योग से (अब्रह्मसेवन आदि) न करूं न कराऊँ, मन से, वचन से, काय से- इस एकादश पौषधोपवास व्रत के श्रमणोपासक को पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है ।

जैसे कि—शय्या-संधारे का मूलतः प्रतिलेखन (निरीक्षण) न किया हो, अथवा विवेक से ठीक तरह न किया हो, शय्या-संधारे की प्रमार्जन (यतना) न की हो, अथवा विवेक से ठीक तरह न की हो, उच्चारण-पासवण (मल-मूत्र) की भूमि (स्थान) का प्रतिलेखन न किया हो, अथवा विवेक से ठीक तरह न किया हो, उच्चार-पासवणभूमि का प्रमार्जन न किया हो, अथवा विवेक से प्रमार्जन न किया हो, पौषधोपवासव्रत का विधिवत् पालन न किया हो । जो मैंने दिवस-सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

व्याख्या :

पौषध :

पौषध सांसारिक जीवन-संघर्ष की सीमा को और अधिक संकुचित कर देता है । एक अहोरात्र के लिए सचित्त वस्तुओं का, शस्त्र का, पाप-

व्यापार का, भोजन, पान का तथा अन्नह्यार्च्य का परित्याग करना पौषध व्रत है। पौषध में साधक की दशा प्रायः साधु जैसी हो जाती है। संसार के प्रपञ्चों से सर्वथा अलग रह कर, एकान्त में स्वाध्याय, ध्यान तथा आत्म, चिन्तन आदि धार्मिक क्रियाएँ करते हुए जीवन को पवित्र बनाना इस व्रत का लक्ष्य है। साधक इसमें साधु-जैसी चर्या का पालन करता है। उसका वेष भी प्रायः साधुतुल्य रहता है।

### पौषध-व्रत :

ग्यारहवाँ पौषध-व्रत है—आहार आदि का त्याग करके एकान्त स्थान में रह कर, धर्म-चर्या का पालन करना। पौषध-व्रत के चार अंग हैं। वे इस प्रकार।

### आहार-पौषध :

चारों आहारों का त्याग करना। भोजन-पान आदि खाद्य एवं पेय सभी आहार-सम्बन्धी द्रव्यों का त्याग करके आत्म-भाव की साधना में लीन होना।

### शरीर-संस्कार-पौषध :

स्नान, उबटन, विलेपन पुष्प, गन्ध, आभूषण, और वस्त्र आदि से शरीर को सजाने का त्याग करना।

### ब्रह्मार्च्य-पौषध :

तीव्र मोहोदय के कारण वेद-जन्य चेष्टारूप मैथुन एवं मैथुन के अंगों का त्याग करना, और आत्म-भाव में रमण करना तथा धर्म का पोषण करना।

### अव्यापार-पौषध :

समस्त गृहकार्य आदि सावद्यव्यापार का त्याग करके संवर-भाव की साधना में लीन रहना। सचित्त का संघट्टा भी न करना।

पौषध्रत की साधना का एकमात्र यही उद्देश्य है, कि जीवन में भोग ही न रह कर त्याग भी आए ।

**अतिचार :**

पौषध्रत के पाँच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने के योग्य तो हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं । वे इस प्रकार हैं—

**अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित-शय्या-संस्तारक :**

पौषध-काल में काम में लिए जाने वाले शय्या=मकान, पाट, बिछौना, एवं संथारा आदि का तथा उपकरणों का प्रतिलेखन न करना अथवा विधि-पूर्वक प्रतिलेखन न करना ।

**अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित-शय्या-संस्तारक**

मकान, पाट, विस्तर एवं धर्मोपकरण आदि का प्रमार्जन न करना अथवा विधि-पूर्वक प्रमार्जन न करना ।

**अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित-उच्चार-प्रस्रवणभूमि :**

शरीरधर्म से निवृत्ति होने के लिए, अर्थात् मल-मूत्र के त्याग के लिए भूमि का प्रतिलेखन न किया हो, अथवा विधि-पूर्वक न किया हो ।

**अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित-उच्चार-प्रस्रवणभूमि :**

मल-मूत्र के त्यागने के लिए भूमि का प्रमार्जन न किया हो, अथवा विधि-पूर्वक प्रमार्जन न किया हो ।

**पौषधोपवास-समननुपालन :**

पौषध्रत का विधिवत् पालन न करना, अथवा सम्यक् रीति से पूरा न करना । समय से पूर्व ही पौषध पार लेना आदि ।

**विशेष ज्ञातव्य :**

यह पौषध चौविहार या त्रिविहार दोनों तरह से हो सकता है । जब त्रिविहार करना हो, तो पाठ में 'पाण' शब्द का प्रयोग न करना

चाहिए । कुछ लोग पानी लेने पर दसवाँ पौषध मानते हैं और इसके लिए देशावकाशिक-व्रत का पाठ पढ़ते हैं । परन्तु यह धारणा गलत है, दशवाँ व्रत पौषध-व्रत नहीं है ।

और आज-कल जो दया का रूप प्रचलित है, यह भी पौषध ही है । इसीलिए इसे दया-पौषा भी कहा जाता है । उक्त क्रिया में 'असण-पाण-खाइम-साइम-पच्चक्खाणं' यह पाठाँश न कहना चाहिए । शेष अंश ज्यों का त्यों है ।

: ३६ :

## द्वादश अतिथि-संविभाग-व्रत

**मूल :** बारसमं अतिहि-संविभागव्वयं समणे निग्गंथे फासुएणं, एसणिज्जेणं, असण-पाण-खाइम-साइमेणं, वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पाय-पुंछणेणं, पाडिहारिणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारणं ओसह-भेसज्जेणं य पडिलाभेमाणे विहरामि । एयस्स बारसमस्स अतिहि-संविभागव्वयस्स समणोवासणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा ।

तं जहा-सच्चि-निकखेवणया, सच्चि-पिहणया, कालाइक्कमे, पर ववएसे, मच्छरिया ।

जोमे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

**अर्थ :** द्वादशवाँ अतिथि-संविभाग व्रत है—श्रमण निर्ग्रन्थ को अचित्त (प्रासुक) तथा एषणीय (कल्पनीय) भोजन, पानी, खादिम (खाने योग्य), स्वादिम (स्वाद योग्य) वस्त्र, प्रतिग्रह (पात्र), कम्बल, पाद-प्रोज्ज्छन (पैर पोंछना, प्रातिहारिक (जो वस्तु गृहस्थ को वापिस लौटाई जा सकें ऐसे) पीठ, फलक (पट्टा), शय्या (वसति आदि), संथारा (घास का बिछौना आदि), औषधि, भूषण्य (अनेक औषधियों का एक संमिश्रण) आदि का प्रतिलाभ (दान) देना ।

इस बारहवें अतिथिसंविभागव्रत के पांच अतिचार श्रमणोपासक को जानने योग्य हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं है ।

जैसे कि—अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रखन अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढांकना काल क अतिक्रमण करना, अपनी वस्तु को (न देने की इच्छा से) दूसरे की बताना, मत्सरभाव से (ईर्ष्याभाव से) दान देना ।

जो मंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किए हों, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

**व्याख्या :**

**अतिथि-संविभाग :**

अतिथि-संविभाग का अर्थ है—अतिथि के लिए विभाग करना । अतिथि का सत्कार करने के लिए अपने भोजन आदि पदार्थों में से उचित विभाग प्रदान करना—अतिथि-संविभाग है । गृहस्थ के घर का द्वार जन सेवा के लिए सदा खुला रहना चाहिए । यदि कभी साधु-साध्वी आएँ, तो भक्तिभाव के साथ उनको योग्य कल्पनीय आहार आदि



देना चाहिए । यदि कोई अन्य अतिथि भी आए, तो उसका भी योग्य आदर होना चाहिए । गृहस्थ के द्वार पर से यदि कोई व्यक्ति भूखा एवं निराश लीट कर जाता है, तो यह समर्थ गृहस्थ के लिए एक पाप है । अतिथिसंविभाग-व्रत इसी पाप से बचने के लिए है ।

### अतिथि-संविभागव्रत :

द्वादशवां अतिथि,संविभाग व्रत है—द्वार पर आए अतिथि का अपने भोजन आदि में से विभाग करना । मनुष्य संग्रह ही संग्रह न करता रहे साथ में देना भी सीखे । लेने के साथ देना भी आवश्यक है । प्रस्तुत व्रत में त्याग की शिक्षा दी गई है । मनुष्य को अपनी सम्पत्ति आदि का व्यामोह होता है और निरन्तर संग्रह भी करता रहता है । परन्तु यदि त्यागना नहीं सीखेगा, तो फिर वह जीवन पवित्र को कैसे बनाएगा ? परिग्रह का बन्धन संसार में सब से बड़ा बन्धन है । त्याग के द्वारा उस बन्धन को तोड़ना, यही उद्देश्य प्रस्तुत व्रत का है । इसमें दान देने की शिक्षा दी गई है ।

### अतिचार :

अतिथिसंविभाग व्रत का मुख्य सम्बन्ध त्यागी साधु से है । अतः तत्सम्बन्धी पांच अतिचार है, जो श्रमणोपासक को जानने योग्य तो हैं, कन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं । वे इस प्रकार हैं—

### सचित्त-निक्षेप :

जो पदार्थ अचित्त होने के कारण मुनि के ग्रहण करने के योग्य है, उसको सचित्त पदार्थों पर रख देना, जिससे कि सचित्त-संस्पर्श का भी त्यागी होने से मुनि ग्रहण न कर सके ।

### सचित्त-परिधान :

सचित्त पदार्थ को सचित्त पदार्थ से ढकना, यह भी उक्त का वृत्त दुषण है ।

**कालातिक्रम :**

भोजन का यथाप्राप्त समय टाल कर भोजन बनाना और खाना जिससे कि भोजन के संभावित अवसर पर कोई अतिथि आ जाय, तो न देना पड़े ।

**परोपदेश :**

वस्तु देनी न पड़ जाए, इसलिए यह कहना कि यह वस्तु तो मेरी नहीं है; यह भी व्रत का दोष है ।

**मात्सर्य :**

स्वयं को तो सहजभाव से देने की भावना नहीं है; परन्तु दूसरों को दान देते देखकर ईर्ष्याभाव से दान करना, कि ये करते हैं, तो मैं भी कछूँ । मैं दान करने में दूसरों से कम नहीं हूँ । अहंकार से दान निर्मल नहीं रहता ।

: ४० :

## संलेखना-सूत्र

**विधि-सूत्र :**

**मूल :** अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-समये पोसह-  
 सालं पडिलेहिता, पोसह-सालं पमज्जिता,  
 दब्भाइ-संधारयं संधरित्ता, दुरुहिता, उत्तर-  
 पुरत्थाभिमुहे संपलियंकाइ-आसणे निसीइत्ता  
 करयल-परिग्गहियं, दस-नहं सिरसावत्तं,  
 मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वइस्सामि ।  
 नमोऽत्थु णं अरिहंताणं- भगवंताणं जाव  
 संपत्ताणं ।

नमोऽत्थु णं मम धम्मायरियस्स जाव संपाविउं  
कामस्स ।

वन्दामि णं भगवंतं तत्थ-गयं, इहगए, पासउ  
मे भगवं ! तत्थ-गए, हइ-गयं ति कट्ठु वंदिचा  
नमंसिचा, एवं वइस्सामि ।

प्रतिज्ञा-सूत्र :

पुव्विं च एां मए पाणाइवाए, पच्चकखाए,  
जाव मिच्छादंसण-सल्लं पच्चकखाए ।

इयाणिं पि णं अहं सव्वं पाणाइवायं पच्च-  
कखामि । सव्वं मुसावायं पच्चकखामि । सव्वं  
अदिन्नादाणां पच्चकखामि ! सव्वं मेहूणां  
पच्चकखामि । सव्वं परिग्गहं पच्चकखामि ।  
सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं अकरणि-  
ज्जं जोगं पच्चकखामि ।

जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणां, न करेमि, न  
कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणु-  
जाणामि । मणसा, वयसा, कायसा ।

सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं चउव्विहं पि  
आहारं पच्चकखामि ।

जावज्जीवाए—जं पि य इमं सरीर इट्ठं, कंत, पिणं, मणुण्णं मणामं धिज्जं, वेसासियं, सम्मयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्ड-करणडग-समाणं, मा णं सीयं, मा णं उएहं, मा एं खुहा, मा ण पिवासा, मा एं बाला, मा ण चारा, मा एं दंसा, मा एं मसगा, मा एं वाइयं पित्थियं-सभिमां, सन्निवाइयं, विविहा रोगा-यंका, परिसहोवसग्गा, फुसंतु चि कट्ठ एवं पि एं चरिमेहिं, उस्सास-नीसासेहिं, वोसि-रामि चि कट्ठ, एवं पि एं संलेहणा, भूसणा भूसिन्ना, काल अणवकंखमाणे विहरामि ! एवं मे सदहणा, परूवणा अणसणावसरे पत्ते, अणसणे कए, फासणाए सुद्धो हविज्जा ।

अतिचार-सूत्र :

एवं अपच्छिम-मारणांपिय-संलेहणा भूसणा-आराहणाए, पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा ।

तं जहा—इहलोगासंसप्पओगे, पर-लोमा-संसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणा-संसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे । तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

## संलेखना विधि ;

अर्थ : (जीवन के अन्त में) मारणान्तिक संलेखना के समय में, पौषध-शाला का प्रतिलेखन करके, पौषध-शाला का प्रमार्जन करके, दर्भ आदि का संधारा (बिछौना) बिछा कर उस पर चढ़ कर, पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके पर्यंक तथा पद्मासन आदि आसन से बैठ कर, दश अंगुली-सहित दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

नमस्कार हो, अरिहंत भगवान् को, यावत् सिद्धि-स्थान को, जो प्राप्त हो गए हैं ।

नमस्कार हो, मेरे धर्माचार्य को, यावत् सिद्धि-स्थान की प्राप्ति के लिए साधना करने वाले को ।

मैं यहाँ से वहाँ रहे भगवान को वन्दना करता हूँ, भगवान् मुझे देख रहे हैं, मेरी वन्दना को स्वीकार करें । वन्दना एवं नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

### प्रतिज्ञा

पहले भी मैंने प्रणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य तक सब पापों का त्याग किया था ।

अब भी मैं सर्व प्रकार के प्राणातिपात का, मृषावाद का, अदत्तादान का मंथुन का और परिग्रह का त्याग करता हूँ । समस्त क्रोध यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य तक के न करने योग्य सावद्ययोगों का त्याग करता हूँ ।

जीवनभर के लिये तीन करण और तीन योग से, न करूँगा न करवाऊँगा और न करते हुआँ का अनु-मोदन करूँगा मन से, वचन से और काय से ।

अशन, पान खाद्य एवं स्वाद्य-सम्बन्धी समस्त चार माहारों का त्याग करता हूँ ।

जीवनपर्यन्त—मैंने अपने इस शरीर का पालन एवं पोषण किया है—जो मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, अवलम्बनरूप, विश्वासयोग्य, सम्मत, अनुमत, बहुमत, आभूषण की पेट्टी के समान प्रिय रहा है, और जिसकी मैंने सर्दी से, गर्मी से, भूख से, प्यास से, सर्प से, चोर से, डांस से, मच्छर से, वात, पित्त, कफ एवं संनिपात आदि अनेक प्रकार के रोग तथा आतंक से, परीषह तथा उपसर्ग आदि से रक्षा की है । ऐसे इस शरीर का भी मैं अन्तिम साँस-उसाँस तक त्याग करता हूँ । इस प्रकार शरीर के ममत्वभाव को त्याग कर, संलेखनारूप तप में अपने आप को समर्पित करके एवं जीवन और मरण की आकांक्षा रहित हो कर विहरण करूँगा । मेरी श्रद्धा एवं प्ररूपणा यह है, कि मैं अनशन के अवसर पर अनशन करूँ, स्पर्शना से शुद्ध बनूँ ।

### अतिचार :

इस प्रकार मारणान्तिक संलेखना के पांच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने के योग्य तो हैं, (किन्तु) आचरण के योग्य नहीं हैं । वे इस प्रकार हैं— इस लोक के सुखों की इच्छा की हो, परलोक के सुखों की इच्छा की हो, अधिक जीने की इच्छा की हो, शीघ्र मरने की इच्छा की हो, काम-भोगों की इच्छा की हो, तो उसका पाप मेरे लिए निष्फल हो ।

**व्याख्या :**

**संधारा :**

जैन-धर्म की निवृत्ति प्रधान साधना में 'संधारा' अर्थात् संस्तारक का बहुत बड़ा महत्व है। जीवनभर की अच्छी बुनी क्रियाओं का लेखा-जोखा लगा कर अन्त समय में, समस्त पापप्रवृत्तियों का त्याग करना, मन, वचन एवं काय को संयम में रखना, ममत्व-भाव से मन को हटा कर आत्म-चिन्तन में लगाना, भोजन पानी तथा अन्य सब उपाधियों को त्याग कर आत्मा को निर्वन्द्व एवं निःस्पृह बनाना—संधारा का महान आदर्श है। जैन-धर्म का आदर्श है—जब तक जीओ विवेकपूर्वक धर्मा-राधन करते हुए आनन्द से जीओ, और जब मृत्यु आ जाए, तो विवेक-पूर्वक धर्मारोधना में आनन्द से ही मरो। साधक-जीवन का आदर्श है—संयम की साधना के लिए अधिक से अधिक जीने का प्रयत्न करो, और जब देखो कि अब जीवन की लालसा में अपने धर्म से विमुख होना पड़ रहा है, तो अपने धर्म पर, अपने संयम में सुदृढ़ रहो, समाधिमरण के लिए तैयार रहो। इसी को संधारा की साधना कहते हैं।

**अतिचार :**

संलेखना के पांच अतिचार हैं, जो श्रमणोपासक को जानने तो चाहिए, (किन्तु) उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—इहलोकाशंसा-प्रयोग :

इस लोक के सुख-साधनों की इच्छा करना। जैसे—मैं राजा बनूँ, मैं चक्रवर्ती बनूँ।

**परलोकाशंसा-प्रयोग :**

परलोक सुख-साधनों की इच्छा करना। जैसे—मैं देव बनूँ, मैं इन्द्र बनूँ।

### जीविताशंसा-प्रयोग :

अधिक दिनों तक जीवित रहने की इच्छा करना । मेरी प्रशंसा हो रही है ; मैं जीवित रहूँ, ताकि सुदीर्घ संथारा के महत्व से मेरी और अधिकाधिक प्रशंसा होती रहे ।

### मरणाशंसा-प्रयोग :

शीघ्र मरने की इच्छा करना । भूख-प्यास से अथवा रोग आदि से व्याकुल हो कर यह सोचना, कि मैं कब मरूँगा ? जल्दी ही मर जाऊँ, तो इस झंझट से छुटकारा मिले ।

### काम-भोगाशंसा-प्रयोग :

काम-भोगों की इच्छा करना । शब्द एवं रूप को काम कहा जाता है और गन्ध, रस तथा स्पर्श को भोग कहा जाता है । काम-भोग की अभिलाषा करना, साधना का दूषण है ।

## आलोचना

: ४१ :

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और बारह व्रत, संलेखना सहित चारित्र के ६६ अतिचार सम्बन्धी अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार ।

जानते-अजानते, मन, वचन, काय से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो, तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुवकडं ।

! ४२ !

## अष्टादश पाप-स्थान

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मंथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, रति-अरति, पैशुन्य, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यादर्शन-शल्य ।



इन अष्टादश पाप स्थानों से किसी भी पापस्थान का सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो, तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

: ४३ :

## उपसंहार-सूत्र

**मूल :** तस्स धम्मस्स, केवलो-पण्णत्तस्स,  
अब्भुद्धिओमि, आराहणाए ।  
विरओमि, विराहणाए ।  
तिविहेणं पडिक्कंतो,  
वन्दामि जिण चउव्वीस ।

**अर्थ :** केवली भगवान् द्वारा भाषित धर्म की आराधना में, मैं स्थित हूँ । विरधना से अलग हूँ ।  
तीन योगों से, मन से, वचन से, काय से, प्रतिक्रान्त होता हुआ, पापाचरण से पीछे की ओर हटता हुआ, स्व-स्वरूप में स्थित होता हुआ, मैं चौबीस तीर्थङ्करों को वन्दन करता हूँ ।

**व्याख्या :**

प्रस्तुत पाठ 'उपसंहार-सूत्र' है, इसमें बताया गया है, कि मैं धर्म की आराधना में स्थिर हूँ और धर्म की विराधना से विरत हूँ । धर्म की विराधना से, मैं, मन से, वचन से, एवं काय से—तीन योग से प्रतिक्रान्त हो कर, दोषों से पीछे हटकर पूर्वगृहीत-संयम सम्बन्धी नियमों में स्थिर हो कर महान् उपकार करने वाले २४ तीर्थङ्करों को वन्दन करता हूँ ।

## पांच पदों की वन्दना

### नमो अरिहंताणं :

नमस्कार हो, अरिहन्तों को। अरिहन्त कैसे है? चार घाती कर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, और अन्तराय का क्षय करने वाले हैं। चार अनन्त-चतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्तचारित्र, और अनन्तवीर्य के धारण करने वाले हैं। देव-दुन्दुभि, भा-मण्डल, स्फटिक-सिंहासन, अशोक-वृक्ष, पुष्प-वृष्टि, दिव्य-ध्वनि, छत्र चामर-इन आठ महाप्रातिहार्यों से सुशोभित है। अरिहंत भगवान् उक्त, बारह गुणों से युक्त हैं, और अठारह दोषों से रहित हैं।

चौसठ इन्द्रों के पूजनीय हैं। चौतीस अतिशय, पैंतिस वाणी के गुण और शरीर के एक-सौ आठ उत्तम लक्षणों से युक्त हैं। वर्तमान काल में जघन्य बीस, उत्कृष्ट एक-सौ साठ, अथवा एक-सौ सत्तर तीर्थङ्कर तथा जघन्य दो करोड़ उत्कृष्ट नव करोड़ सामान्य केवली, पांच महाविदेह क्षेत्रों में विहरमाण अरिहंत भगवानों को वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, तथा जानते अजानते किसी भी प्रकार का अविनय एवं आशातना हुई हो, तो तीन करण और तान योग से क्षमा चाहता हूँ।

### नमो सिद्धाणं :

नमस्कार हो, सिद्धों को। सिद्ध कैसे हैं? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय-इन आठ कर्मों को क्षय करके जिन्होंने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन-अनन्तसुख, क्षायिक-भाव, अक्षय अवगाहनत्व, अमूर्तित्व, अगुरु-

लघुत्व, अनन्तवीर्य रूप आठ गुण प्राप्त किये हैं। इकत्तीस गुणों से युक्त हैं।

सिद्धों में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, संस्थान नहीं, वेद नहीं, काया नहीं, कर्म नहीं, जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, पुनरागमन नहीं। अस्तु, पन्द्रहभेदी सिद्ध भगवानों को वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, तथा जानते अजानते किसी भी प्रकार की अविनय एवं अशानता हुई हो, तो तीन करण और तीन योग से क्षमा चाहता हूँ।

### नमो आयरियाणां :

नमस्कार हो, आचार्यों को। आचार्य कैसे हैं? पाँच आचार पाँच महाव्रत, पाँच इन्द्रिय-जय, चार कषाय-जय, नव वाड सहित शुद्ध-शील, पाँच समिति, तीन गुप्ति-इन छत्तीस गुणों से युक्त हैं, और जो श्रुत सम्पदा, शरीर-सम्पदा, वचन-सम्पदा, मति-सम्पदा, प्रयोग-सम्पदा, वाचना-सम्पदा, संग्रह-सम्पदा, आचार-सम्पदा इन आठ सम्पदाओं से सम्पन्न हैं, तथा अन्य अनेक गुणों से संयुक्त हैं, उन आचार्य महाराज को वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, तथा जानते-अजानते किसी भी प्रकार की अविनय एवं आशातना हुई हो, तो तीन करण और तीन योग्य से क्षमा चाहता हूँ।

### नमो उवज्झायाणां :

नमस्कार हो, उपाध्यायों को। उपाध्याय कैसे हैं? जो ग्यारह अंग—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोप-पातिकदशा, प्रश्न-व्याकरण, विपाकश्रुत, और बारह उपांग-औप-पातिक, रायपसेणिय, जीवा-जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बू-दीप-

प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति, निरयावलिवा, कप्पिया, कप्पवडिसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हीदसा को स्वयं पढते हैं और दूसरों को भी पढाते हैं। चरण-सत्तरी एवं करण-सत्तरी का पालन करते हैं। जो उक्त पच्चीसगुणों से विभूषित है। निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प, दशाश्रुतस्कन्ध-इन चार छेद सूत्रों के, तथा दशवंकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, अनुयोगद्वार—इन चार मूल सूत्रों के और आवश्यक सूत्र के ज्ञाता हैं।

उपाध्याय महाराज को वन्दना करता है, नमस्कार करता है, तथा जानते-अजानते किसी भी प्रकार की अविनय एवं आशातना हुई हो, तो तीन करण और तीन योग से क्षमा चाहता है।

### नमो लीए सव्वसाहूणां :

नमस्कार हो, लोक में समस्त साधुओं को। साधु कैसे हैं ? पाँच महाव्रत के धारक हैं। पाँच इन्द्रिय और चार कषायों के विजेता हैं। भावसत्य, कर्णसत्य एवं योगसत्य से युक्त हैं। क्षमाशील है, वंराग्यवान् हैं। मनः समाधारणता, वचन-समाधारणता एवं कारसमाधारणता से युक्त हैं। ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता तथा चरित्रसम्पन्नता से युक्त हैं, शीत, उष्ण आदि वेदना सहन करते हैं। मारणान्तिक उपसर्ग सहन करते हैं। उक्त सत्ताईस गुणों से युक्त हैं।

दश प्रकार के यति-धर्म को धारण करते हैं। सत्तरह प्रकार का संयम पालते हैं। अठाग्रह पाप के त्यागी हैं। बाईस परिषह के जीतने वाले हैं। ब्यापीस दोष टाल कर आहार लेते हैं। अढ़ाई द्वीप की कर्म-भूमि के पन्द्रह क्षेत्रों में अरिहन्त भगवान् की आज्ञा के अनुसार जघन्य दो हजार करोड़ एवं उत्कृष्ट नव हजार करोड़ साधु विहरण करते हैं।

ऐसे साधु महाराज को वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, तथा जानते-अजानते किसी भी प्रकार की अविनय एवं आशा-तना हुई हो, तो तीन करण और, तीन योग से क्षमा-चाहता हूँ ।

: ४५ :

### अरिहंत-वन्दना

नमो श्री अरिहंत, करमों का किया अंत,  
हुवा सो केवलवंत, करुणा भण्डारी है;  
अतिशय चौंतीसधार, पैंतीस वाणी उच्चार  
समभावे नरनार, पर उपकारी है ।  
शरीर सुन्दराकार, सूरज-सो झलकार,  
गुण हैं अनन्त सार, दोष परिहारी है;  
कहत है तिलोक रिख, मन वच काय करि  
भुकी-भुकी बारंबार वन्दना हमारी है ॥

### सिद्ध-वन्दना :

सकल करम टाल, वश कर लियो काल,  
मुक्ति में रह्या माल, आतमा को तारी है?  
देखत सकल भाव, हुआ है जगत्-राव,  
सदा ही क्षायिक भाव-भय अविकारी हैं ।  
अचल अटल रूप आवे नहीं भव-कूप,  
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसी सिद्ध धारी हैं;

कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु,  
सदा हि उगंत सूर, वन्दणा हमारी है ॥

आचार्य-वन्दना :

गुण हैं छतीस पूर, धरत धरम उर,  
मारत करम कूर, सुमति विचारी है;  
शुद्ध सो आचारवंत, सुन्दर है रूप कन्त,  
भणिया सभी सिद्धान्त, वाचणी सु प्यारी है ।  
अधिक मधुर वैण, कोई नहीं लोपे केण,  
सकल जीवों का सेण, कीरति अपारी है;  
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सिख,  
ऐसे आचारज ताकुं, वंदणा हमारी है ॥

उपाध्याय-वन्दना :

पढ़त इग्यारे अंग, कर्मोंसुं करे जंग,  
पाखंडी को मान भंग, करण हुशियारी है;  
चउदे पूरव धार, जाणत आगम सार,  
भवियन के सुखकार, भ्रमणा निवारी है ।  
पढ़ावे भविक जन, स्थिर कर देत मन,  
तय कर तावे तन, ममता निवारी है;  
कहत है तिलोकरिख, ज्ञान भानु परतिख,  
ऐसे उपाध्याय ताकुं, वंदना हमारी है ॥

## साधु-वन्दना :

---

आदरी संजम भार, करणी करे अपार,  
 सुमति गुपति धार, विकथा निवारी है;  
 जयणा करे छ काय, सावद्य न बोले वाय,  
 बुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है ।  
 ज्ञान पढ़े आढ़ों याम, लेवे भगवंत नाम,  
 धरम को करे काम; ममता को मारी है;  
 कहत है तिलोकरिख, कर्मा को टाले विख,  
 ऐसे मुनिराज ताकुं, वन्दणा हमारी है ॥

## गुरुदेव-वन्दना :

---

जैसे कपड़ा को थाण, दरजी वेंतत् आण  
 खंड-खंड करे जाण, देत सो सुधारी है;  
 काठ के ज्यूं सूत्रधार, हेमको कसे सुनार,  
 माटी के जो कुम्भकार, पात्र करें त्यारी है ।  
 धरती के करसाण, लोहे के लुहार जाण,  
 सीलवट सीला आण, घाट घड़े भारी है,  
 कहत है तिलोकरिख, सुधारे ज्यूं गुरु शिष्य,  
 गुरु उपकारी, नित लीजे बलिहारी है ॥

गुरु मित्र गुरु मात, गुरु सगा, गुरु तात,  
 गुरु भूप, गुरु भ्रात, गुरु हितकारी है,  
 गुरु रवि, गुरु चन्द्र, गुरु पति, गुरु इन्द्र,  
 गुरु देव दे आणांद, गुरु पद भारी है ।  
 गुरु सिखात ज्ञान-ध्यान, गुरु देत दान मान  
 गुरु देत मोक्ष-भान सदा उपकारी है,  
 कहत है तिलोकरिख, भली-भली देवे सिख,  
 पल-पल गुरुजी को, वंदणा हमारी है ॥

: ४६ :

अनन्त<sup>१</sup> चौबीसी ते नमूँ, सिद्ध अनन्ता कोड़ ।  
 केवली ज्ञानी थेवर सभी; वंदूँ बे कर जोड़ ॥  
 दो कोड़ी केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।  
 सहस युगल कोड़ी नमूँ; साधू वंदूँ निस दोस ॥

: ४७-:

## समुच्चय जीवों से क्षमापना

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख  
 तेजस्काय, सात लाख वायुकाय ।

दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण  
 वनस्पतिकाय ।

दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय ।

चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च  
 पञ्चेन्द्रिय और चौदह लाख मनुष्य ।

१५ यह पाठ कहीं पढ़ा जाता है, कहीं नहीं ।



इस प्रकार चार गति, चौरासी लाख जीवयोनि के किसी भी जीव को हना हो, हनाया हो हनते को भला जाना हो, तो १८, २४, १२० बार तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सब जीवों से मन, वचन और काय से क्षमा-याचना करता हूँ । सब जीव मुझे क्षमा करें ।

: ४८ :

### क्षमापना सूत्र

मूल : खामेमि सव्वे जीवे,  
 सव्वे जीवा खमंतु मे ।  
 मित्ती मे सव्व-भूएसु,  
 वेरं मज्झं न केराइ ॥  
 एवमहं आलोइअ,  
 निंदिय गरिहिअ दुगुच्छिउं सम्मं  
 तिविहेणं पडिक्कंतो;  
 वन्दामि जिणा-चउव्वीसं ।

अर्थ : मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, और वे सब जीव भी मुझे क्षमा करें । मेरी सब जीवों के साथ मित्रता है, किसी के साथ मेरा बैर-विरोध नहीं है ।

इस प्रकार मैं सम्यक् आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा के द्वारा तीन योग से—मन से, वचन से एवं काय से—प्रतिक्रमण करके, पापों से निवृत्त हो कर, चौबीस तीर्थङ्करों को वन्दन करता हूँ ।

## व्याख्या

क्षमा, साधक-जीवन का सब से बड़ा गुण है। वह साधक ही क्या जो जरा-जरा-सी बात पर क्रोध करे। वैर-विरोध करे। लड़ाई-झगड़ा करता फिरे। वैर-विरोध की अग्नि, वह भयंकर अग्नि है, जो हृदय को मृदुता को जला डालती है। क्षमा, साधक की सब से बड़ी शक्ति है, अपार बल है।

क्षमा का अर्थ है—सहिष्णुता रखना स्वयं किसी का अपराध न करना और दूसरों के अपराध को क्षमा कर देना। क्षमा के बिना साधना पनप ही नहीं सकती।

प्रस्तुत पाठ में साधक संसार के समस्त जीवों को क्षमा करता है। और दूसरों से कहता है, कि वे भी मुझ को क्षमा करें। क्षमा का मूल आधार मैत्रीभाव है। परन्तु वह तभी स्थिर हो सकता है, जबकि साधक के मानस में किसी के प्रति वैर-विरोध न हो। वस्तुतः वैर-विरोध को भूल कर, सबसे प्रेम करना ही सच्ची क्षमा है। क्षमा की साधना से जीवन पवित्र बनता है।

आलोचना जीवन-विकास का मूल है। अपनी भूलों को समझना, और समझ कर छोड़ना—आलोचना का तथ्य है। जो साधक अपने जीवन की शुद्धि चाहता है, उसे आलोचना के पथ पर अग्रसर होना ही होगा।

निन्दा का अर्थ है—आत्म-साक्षी से अपने मन में, अपने पापों की निन्दा करना। गर्हा का अर्थ है—पर की साक्षी से अपने पापों की बुराई करना। जुगुप्सा का अर्थ है—पापों के प्रति पूर्ण घृणा-भाव व्यक्त करना। जब तक पाप के प्रति घृणा न होगी, तब तक मनुष्य उससे बच नहीं सकता। इम प्रकार आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा के द्वारा किया गया प्रतिक्रमण ही सच्चा प्रतिक्रमण है।

**मूल :** आवस्सहि इच्छाकारेण संदिसह भगवं !  
देवसिय-पायच्छित्त-विसोहणद्धं करेमि काउ-  
स्सग्गं ।

**अर्थ :** भन्ते (आप इच्छा-पूर्वक आज्ञा दीजिए (जिससे मैं) अवश्यकरणीय, दिवस-सम्बन्धी प्रायश्चित्त को विबुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करूँ ।

: ५० :

ध्यान के विषय में मन का, वचन का, काय का जो कोई छोटा योग प्रवर्तया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

: ५१ :

१. सामायिक
२. चतुर्विंशति स्तव
३. वन्दना
४. प्रतिक्रमण
५. कायोत्सर्ग
६. प्रत्याख्यान

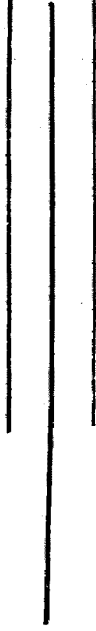
सुहाए, निस्सेसयाए, अणुगामियाए भविस्सति ।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण और अशुभयोग का प्रतिक्रमण ।

इन पाँच प्रतिक्रमणों में से कोई भी प्रतिक्रमण न किया हो, विधि-पूर्वक उपयोग के साथ न किया हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

# श्रावक प्रतिक्रमण-सूत्र

---



परिशिष्ट

## प्रत्याख्यान

पञ्चकखाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?  
पञ्चकखाणेणं आसव-दाराइं निरुंभइ, पञ्च-  
कखाणेणं इच्छा-निरोहं जणयइ, इच्छा-निरोहं-  
गए णं जीवे सव्व-दव्वेसु विणीय-तण्हे, सीई-  
भूए विहरइ,

अर्थ : 'भगवन् ! प्रत्याख्यान करने से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है ?

प्रत्याख्यान करने से हिंसा आदि आश्रव-द्वार बन्द हो जाते हैं, और इच्छा का निरोध हो जाता है, इच्छा का निरोध होने से समस्त विषयों के प्रति वितृष्ण होकर, साधक शान्त-चित्त रह कर, विचरण करता है ।

## दश प्रत्याख्यान

### (१) नमस्कार-सहित-सूत्र :

**मूल :** उग्गए सूरे नमोक्कार-सहियं पच्चक्खामि ।  
चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं  
साइमं ।

अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं. बोसिरामि ।

**अर्थ :** सूर्य उदय होने पर, [दो घड़ी दिन चढ़े तक]  
नमस्कार-सहित प्रत्याख्यान ग्रहण करता हूँ । अशन,  
पान, खाद्य और स्वाद्य—चारों प्रकार के आहारों का  
त्याग करता हूँ ।

इस प्रत्याख्यान में दो आगार (अपवाद) हैं—अना-  
भोग = अत्यन्त विस्मृति, और सहसाकार = शीघ्रता ।  
उक्त दो कारणों के सिवा चारों आहारों का त्याग  
करता हूँ ।

**ट्याख्या :**

नमस्कार-सहित का अर्थ है—<sup>1</sup>सूर्योदय से लेकर दो घड़ी दिन चढ़े तक; अर्थात्—मुहूर्तभर के लिए, बिना नमस्कार-मन्त्र पढ़े आहार ग्रहण नहीं करना । इसका दूसरा नाम नमस्कारिका भी है । आजकल साधारण

१. “नमस्कारेण —पंचपरमेष्ठिस्तवेन सहितं प्रत्याख्याति । ‘सर्वे धातवः कंरोत्यर्थेन व्याप्ता’ इति भाष्यकार-वचनात् नमस्कारसहितं प्रत्याख्यानं करोति ।”

बोलचाल में नवकारसी कहते हैं। नमस्कारिका<sup>१</sup> में केवल दो ही आगार हैं - अनाभोग, और सहसाकार।

(१) अनाभोग : इसका अर्थ है—अत्यन्त विस्मृति। प्रत्याख्यान लेने की बात सर्वथा भूल जाय और उस समय असावधानतावश कुछ खा-पी लिया जाय, तो वह अनाभोग-आगार की मर्यादा में रहता है।

(२) सहसाकार : इसका अर्थ है—मेघ बरसने पर, अथवा दही आदि मथते समय अचानक ही जल या छाछ आदि का छीटा मुख में चला जाय।

## (२) पौरुषी-सूत्र :

**मूल :** उग्गए सरे पोरिसिं पच्चक्खामि । चउव्विहं  
पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं ।

१. यह कथन आचार्य सिद्धसेन का है, जिसका भावार्थ है कि—मुहूर्त पूरा होने पर भी नवकारमन्त्र पढ़ने के बाद ही नमस्कारिका का प्रत्याख्यान पूरा होता है, पहले नहीं। यदि मुहूर्त से पहले ही नवकारमन्त्र पढ़ लिया जाय, तब भी नमस्कारिका पूर्ण नहीं होती है। नमस्कारिका के लिए यह आवश्यक है कि सूर्योदय के बाद एक मुहूर्त का काल भी पूर्ण हो जाय, और प्रत्याख्यान-पूर्तिस्वरूप नवकारमन्त्र का जप भी कर लिया जाय। इन्हीं विषयों को प्रवचन-सा-ोद्धार की वृत्ति में आचार्य सिद्धसेन ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—“स च ननस्कारसहितः पूर्णोऽपि काले नमस्कारपाठमन्तरेण प्रत्याख्यानस्यापूर्वमाणत्वात्, सत्यपि च नमस्कार-पाठे मुहूर्ताभ्यन्तरे प्रत्याख्यानभंगात्, ततः सिद्धमेतत् मुहूर्तमानकाल-नमस्कार-सहितं प्रत्याख्यानमिति ।”—प्रत्याख्यानद्वार।

अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं पच्छन्न-  
कालेणं, दिशामोहेणं, साधुव्ययेणं, सव्व-  
समाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि ।

अर्थ : पौरुषी का प्रत्याख्यान करता हूँ सूर्योदय से ले कर  
पहर दिन चढ़े तक अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य—  
चारों प्रकार के आहारों का त्याग करता हूँ ।

अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिशा-मोह, साधु-  
वचन, सर्वसमाधिप्रत्याकार (किसी आकस्मिक शूल  
आदि तीव्र रोग की उपशान्ति के लिए औषध  
आदि ग्रहण कर लेना) उक्त छह आगार के सिवा  
चारों आहारों का त्याग करता हूँ ।

व्याख्या :

पौरुषी में छह आगार है । दो पहले के हैं, शेष चार इस प्रकार हैं

(अ) प्रच्छन्न-काल—बादल अथवा आंधी आदि के कारण सूर्य  
ढक जाने से पोरिसी पूर्ण होने की भ्रान्ति हो जाना ।

(ब) दिशा-मोह—पूर्व को पश्चिम समझ कर पोरिसी न आने पर  
भी सूर्य के ऊँचा चढ़ आने की भ्रान्ति से अशनादि-सेवन कर लेना ।

(स) साधु-वचन 'पोरिसी आ गई', इस प्रकार किसी आप्त  
पुरुष के कहने पर बिना पोरिसी आए ही पोरिसी पार लेना ।

(द) सर्व-समाधि-प्रत्याकार—किसी आकस्मिक शूल आदि  
तीव्र रोग की उपशान्ति के लिए औषधि आदि ग्रहण कर लेना ।

(३) पूर्वार्ध-सूत्र :

मूल : उग्गए सरे पुरिमड्ढं पच्चक्खाभि । चउच्चिव्हं  
पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं ।



अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्न-  
कालेणं, दिसा-मोहेणं, साहु-वयणेणं, महत्त-  
रागारेणं, सब्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि

अर्थ : सूर्योदय से लेकर दिन के पूर्वार्ध तक (दो पहर तक) चारों आहारों का—अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य का त्याग करना है।

अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिशामोह, साधु वचन महत्तराकार और सर्व-समाधि प्रत्यया-कार—उक्त बात प्रकार के आहारों के सिवा चारों आहारों का त्याग करता है।

व्याख्या

महत्तराकार का अर्थ है—विशेष निजंरा आदि को ध्यान में रख कर रोगी आदि की सेवा के लिए, अथवा श्रमणसंघ के किसी अन्य महत्वपूर्ण कार्य के लिए गुरुदेव आदि महत्तर-रूप की आज्ञा पा कर निश्चित समय के पहले ही प्रत्याख्यान पार लेना।

(४) एकाशन-सूत्र :

मूल : एगासणं पच्चक्खामि । तिविहं पि आहारं-  
असणं खाइमं साइमं ।

अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिया-  
गारेणं, आउंटणापसारणेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं  
पारिट्ठावशियागारेणं, महत्तरागारेणं, सब्व-  
समाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि ।

अर्थ : एकाशन (तप) स्वीकार करता हूँ । अशन, खाद्य एवं स्वाद्य-- तीनों आहारों का त्याग करता हूँ । अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, आकुञ्चन-प्रसारण, गुरु—अभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्व-समाधि-प्रत्याकार—उक्त आठ आहारों के सिवा तीनों आहारों का त्याग करता हूँ ।

व्याख्या :

(अ) सागारिकाकार—आगम की भाषा में सागारिक 'गृहस्थ' को कहते हैं । गृहस्थ के आ जाने पर उसके सम्मुख भोजन करना निषिद्ध है । अतः सागारिक<sup>१</sup> के आने पर साधु को भोजन करना छोड़ कर यदि बीच में ही उठ कर, एकान्त में जा कर पुनः दूसरी बार भोजन करना पड़े, तो व्रतभंग का दोष नहीं लगता ।

(ब) आकुञ्चन प्रसारण—भोजन करते समय सुन्न पड़ जाने आदि के कारण से हाथ, पैर आदि अंगों का सिकोड़ना या फैलाना । उपलक्षण से आकुञ्चन-प्रसारण में शरीर का आगे-पीछे हिलाना-डुलाना भी आ जाता है ।

१ आचार्य जिनदास ने आवश्यक-चूर्णि में लिखा है कि आगन्तुक गृहस्थ यदि शीघ्र ही चला जाने वाला हो, तो कुछ समय प्रतीक्षा करनी चाहिए सहसा उठ कर नहीं जाना चाहिए । यदि गृहस्थ बैठने वाला है और शीघ्र ही नहीं जाने वाला है, तब अलग एकान्त में जा कर भोजन से निवृत्त हो लेना चाहिए । व्यर्थ में लम्बी प्रतीक्षा करते रहने में स्वाध्याय की हानि होती है ।

“सागारियं अद्व समुद्दिद्वम्स आगतं यदि बोलेति पडिच्छति अहथिरं ताहे सज्जायवाधातो त्ति उट्टेत्ता अन्नत्थ गंतूणं समुदिसति ।”

सर्प और अग्नि आदि का उपद्रव होने पर भी अन्यत्र जा कर भोजन किया जा सकता है । सागारिक शब्द से सर्पादि का भी ग्रहण है ।

(स) गुर्वभ्युत्थान—गुरुजन एव किसी अथितिविशेष के आने पर उनका विनय-सत्कार करने के लिए उठना या खड़े होना ।

(५) एककासणं एगद्धाणं पच्चक्खामि ! तिविहं  
पि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं ।

अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागा-  
रियागारेणं अब्भुद्धाणेणं, पारिट्ठावणि-  
यागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिया-  
गारेणं वोसिरामि ।

अर्थ : एकाशनरूप एकस्थान का (व्रत) ग्रहण करता हूँ ।  
अशन, खाद्य एवं स्वाद्य—तीनों आहारों का त्याग  
करता हूँ ।

अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, गुरु-अभ्यु-  
त्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व-  
समाधिप्रत्ययाकार—उक्त सात आगारों के सिवा  
आहार का त्याग करता हूँ ।

(६) आचाम्ल-सूत्र :

मूल : आयंबिलं पच्चक्खामि । अन्नत्थणाभोगेणं,  
सहसागारेणं, लेवालेवेणं, उखक्खित्तविवेगेणं,

## गिहि-संसृष्टेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरा- गारेणं, सब्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

अर्थ : आयंबिल (आचाम्लतप) ग्रहण करता है । अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, उत्क्षिप्तविवेक, गृहस्थ-संसृष्ट, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्वसमाधि-प्रत्ययाकार—उक्त आठ आगार के सिवा आहार का त्याग करता है ।

व्याख्या :

आयंबिल में आठ प्रकार के आगार माने गए हैं, जिनमें पाँच आगार तो पूर्वकथित प्रत्याख्यानों के समान ही हैं । केवल तीन आगार ही ऐसे हैं, जो नवीन हैं । उनका परिचय इस प्रकार है—

(अ) लेपालेप—आचाम्लव्रत में ग्रहण न करने योग्य शाक तथा घृत आदि विकृति से यदि पात्र अथवा हाथ आदि लिप्त हो, और दातार गृहस्थ यदि उसे पोंछ कर उसके द्वारा आचाम्लयोग्य भोजन बहराए, तो ग्रहण कर लेने पर व्रतभंग नहीं होता है ।

(ब) उत्क्षिप्तविवेक—शुष्क ओदन एवं रोटी आदि पर गुड़ तथा शक्कर आदि अद्रव—सूखी विकृति पहले से रखी हो । आचाम्ल-व्रतधारी मुनि को यदि वह विकृति उठा कर रोटी आदि देना चाहे, तो ग्रहण की जा सकती है । उत्क्षिप्त का अर्थ है—उठाना, और विवेक का अर्थ है—उठाने के बाद उसका लगा न रहना ।

(स) गृहस्थ-संसृष्ट—घृत अथवा तैल आदि विकृति से छोके हुए कृत्माष आदि—गृहस्थसंसृष्ट आगार है; अथवा गृहस्थ ने अपने लिए जिस रोटी आदि खाद्यवस्तु पर घृतादि लगा रखा हो, उसको ग्रहण करना भी गृहस्थसंसृष्ट आगार है । उक्त आगार में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यदि विकृति का अंश स्वल्प हो, तब तो व्रत-

भंग नहीं होता । परन्तु विकृति यदि अधिक मात्रा में हो, तो वह ग्रहण कर लेने से व्रत-भंग का निमित्त बनती है ।

### (७) उपवास-सूत्र :

**मूल :** उग्गए सूरु अमत्तट्ठं पच्चक्खामि । चउव्विहं  
पि आहारं-असणं,<sup>१</sup> पाणं, खाइमं-साइमं ।  
अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिट्ठाव-  
णियागारेणं महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-  
वत्तियागारेणं वोसिरामि ।

**अर्थ :** सूर्योदय के होने पर उपवास ग्रहण करता हूँ । अशन पान, खाद्य एवं स्वाद्य—चारों आहारों का त्याग करता हूँ ।

अनाभोग, सहसाकार, परिष्ठापनिकाकार, महत्तरा-  
कार, सर्वसमाधि-प्रत्ययाकार — उक्त पाँच आहारों  
के सिवा चारों आहारों का त्याग करता हूँ ।

### (८) दिवस चरिम-सूत्र :

**मूल :** दिवस-चरिमं पच्चक्खामि । चउव्विहं पि  
आहारं-असणं पाणं, खाइमं साइमं ।  
अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरा-  
गारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

१. तिविहार उपवास करना हो, तो 'गण' का पाठ न बोलें ।

अर्थ : दिनसन्नरुम का (व्रत) ग्रहण करता । चारों आहारों का त्याग करता है ।

अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार एवं सर्वसमाधि-प्रत्ययाकार—उक्त चार आहारों के सिवा चारों आहारों का त्याग करता है ।

(९) अभिग्रह-सूत्र :

मूल : अभिग्रहं पञ्चकखामि । चउच्चिहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं ।  
अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

अर्थ : अभिग्रह का व्रत ग्रहण करता है । चारों आहारों का त्याग करता है ।

अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार, सर्वसमाधि-प्रत्ययाकार—उक्त चार आहारों के सिवा चारों आहारों का त्याग करता है ।

(१०) निर्विकृतिक-सूत्र :

मूल : विगइओ पञ्चकखामि । अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थ-संसट्ठेणं, उक्खिच्चविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारि-ट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

अर्थ : विकृतियों का त्याग करता है। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थसंसृष्ट, उत्क्षिप्तविवेक, प्रतीत्यन्नक्षित, पारिष्ठापनिक, महत्तराकार, सर्वसमाधिप्रत्ययाकार—उक्त नव आगारों के सिवा विकृति का त्याग करता है।

व्याख्या :

निर्विकृति के नौ आगार हैं, जिनमें से आठ आगारों का वर्णन तो पहले के पाठों में यथास्थान आ चुका है। प्रतीत्यन्नक्षित नामक आगार नया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है—

भोजन बनाते समय जिन रोटी आदि पर सिर्फ ऊँगली से घी आदि चुपड़ा गया हो, तो ऐसी वस्तुओं को ग्रहण करना—प्रतीत्यन्नक्षित<sup>१</sup> आगार कहलाता है। इस आगार का यह भाव है कि—घृत आदि विकृति का त्याग करने वाला साधक धारा के रूप में घृत आदि नहीं खा सकता। हाँ, घी से साधारणतौर पर चुपड़ी हुई रोटियाँ खा सकता है। इस सम्बन्ध में एक प्रामाणिक कथन इस प्रकार है—

“प्रतीत्य सर्वथा रूक्षमण्डकादि, ईषत्सौकुमार्यप्रतिपादनाय यदंगुल्या ईषद्घृतं गृहीत्वा अक्षितं तदा कल्पते, न तु धारया।”

—तिलकाचार्य-कृत, देवेन्द्र-प्रतिक्रमण-वृत्ति

१. ‘अक्षित’—चुपड़े हुए को कहते हैं। और प्रतीत्यन्नक्षित कहते हैं। जो अच्छी तरह चुपड़ा हुआ न हो, किन्तु चुपड़ा हुआ जैसा भी हो; अर्थात्-अक्षिताभास हो।

‘अक्षितमिव यद् वर्तते तत्प्रतीत्यन्नक्षित अक्षिताभासमित्यर्थं।’

—प्रवचनसारोद्धार वृत्ति

(११) प्रत्याख्यान-पारणा-सूत्र :

मूल : उग्गए सूरे नमोक्कार-सहियं...पच्चक्खाणां  
कयं तं पच्चक्खाणां सम्मं काएण फासियं,  
पालियं, तीरियं किट्टियं, सोहियं, आराहिअं ।  
जं च न आराहिअं, तस्म मिच्छा मि दुक्कडं ।

अर्थ : सूर्योदय होने पर जो नमस्कारसहित प्रत्याख्यान....  
किया था, वह प्रत्याख्यान [मन, वचन] शरीर के  
द्वारा सम्यकरूप से स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीरित,  
कीर्तित, एवं आराधित किया, एवं जो सम्यक् रूप  
से आराधित न किया हो, तो उसका दुष्कृत मेरे  
लिए मिथ्या हो ।

व्याख्या :

प्रत्याख्यान पारने के छह अंग बतलाए गए हैं । अस्तु, मूलपाठ के  
अनुसार निम्नलिखित छहों अंगों से प्रत्याख्यान की आराधना करनी  
चाहिए—

१. फासियं (स्पृष्ट अथवा स्पर्शित)—गुरुदेव से या स्वयं विधि-  
पूर्वक प्रत्याख्यान लेना ।

२. पालियं (पालित)—प्रत्याख्यान को बार-बार उपयोग में  
ला कर सावधानी के साथ उसकी सतत रक्षा करना ।

३. सोहियं (शोधित)—कोई दूषण लग जाय, तो सहसा उसकी  
शुद्धि, करना, अथवा 'सोहियं' का संस्कृत रूप 'शोभित' भी होता है ।  
इस दशा में अर्थ होगा—गुरुजनों को साथियों को अथवा अतिथि जनों  
को भोजन देकर स्वयं भोजन करना, प्रत्याख्यान की शोभा बढ़ाना ।



४. तीरियं (तीरित)—गृहीत प्रत्याख्यान का काल पूरा हो जाने पर भी कुछ समय ठहर कर भोजन करना ।

५. किट्टियं (कीर्तित)—भोजन आरम्भ करने से पहले लिये हुए प्रत्याख्यान को विचार कर उत्कीर्तन-पूर्वक कहना कि मैंने अमुक प्रत्याख्यान अमुक रूप से ग्रहण किया था, और वह भलीभाँति पूरा हो गया है ।

६. आराहियं (आराधित)—सब दोषों से सर्वथा दूर रहते हुए ऊपर कही हुई विधि के अनुसार प्रत्याख्यान की आराधना करना ।

साधारण मनुष्य सर्वथा भ्रान्तिरहित नहीं हो सकता । वह साधना करता हुआ भी कभी-कभी साधना के पथ से इधर-उधर भटक जाता है । प्रस्तुत सूत्र के द्वारा स्वीकृत व्रत की शुद्धि की जाती है, भ्रान्ति-जनित दोषों की आलोचना की जाती है, और अन्त में मिच्छामि दुक्कडं दे कर प्रत्याख्यान में लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है । आलोचना एवं प्रतिक्रमण करने से व्रत शुद्ध हो जाता है ।

## प्रतिक्रमण करने की विधि

प्रतिक्रमण प्रारम्भ करने से पहले पूर्वदिशा में या उत्तर दिशा में, और यदि गुरु हों, तो गुरु के सम्मुख होकर, सामने बैठकर 'चउवीसत्थव' करना चाहिए । उसकी विधि, सामायिक की विधि के समान ही है । अन्तर केवल इतना है, कि 'करेमि भंते' पाठ संख्या ६ नहीं बोलना चाहिए ।

चउवीसत्थव के अनन्तर 'तिक्खुत्तो' पाठसंख्या २ तीन बार बोलकर, गुरु को वन्दना करके गुरु से प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेनी चाहिए । आज्ञा लेकर सर्वप्रथम श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र का 'आवस्सहि इच्छामि ण' पाठसंख्या १ बोले । फिर 'तिक्खुत्तो' से प्रथम आवश्यक की आज्ञा ले ।

### प्रथम आवश्यक :

नमोक्कार मन्त्र' सामायिकसूत्र का पाठसंख्या १, फिर 'करेमि भन्ते' सामायिकसूत्रगत पाठसंख्या ६, "इच्छामि पडिक्कमिउं" पाठ संख्या २, 'तस्स उत्तरो' पाठसंख्या ६, फिर काउस्सग्ग करे । 'काउस्सग्ग' में ६६ अतिचारों का पाठ संख्या ३ से लेकर २१ तक बोले, परन्तु मन में ही, उच्चारण करके नहीं । जहाँ 'मिच्छा मि दुक्कडं' पद आए, वहाँ पर आलोऊँ बोले । नमो 'अरिहंताणं' बोल कर का काउस्सग्ग पारे । फिर 'ग्घान के विषय' पाठ संख्या ५० बोलकर, दूसरे आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे ।

### द्वितीय आवश्यक :

लोगस्स, पाठसंख्या ८ बोले उच्चारण करके । फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले ।

### तृतीय आवश्यक :

तीसरे आवश्यक में दो 'इच्छामि खमासमणो' पाठ संख्या २२ बोले । फिर चतुर्थ आवश्यक की आज्ञा ले ।

### चतुर्थ आवश्यक :

चतुर्थ आवश्यक में ६६ अतिचार पाठसंख्या ३ से लेकर २१ तक सभी पाठों को उच्चारण से पढ़े । फिर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' पाठसंख्या २ बोलकर श्रावकसूत्र पढ़ने की आज्ञा ले । श्रावकसूत्र पढ़ते समय दाहिना घुटना ऊँचा करके और बायां घुटना नीचा करके बैठना चाहिए । फिर इस प्रकार बोले—

प्रथम 'नमोक्कार मन्त्र, सामायिकसूत्र, का पाठसंख्या १, 'करेमि भन्ते !' पाठसंख्या ६, 'चत्तारि मंगलं' पाठसंख्या २३,

१. 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' इस तरह भी बोला जाता है ।

‘इच्छामि पडिक्कमिउं’ पाठसंख्या २, ‘इच्छाकारेण’ पाठसंख्या ५, ‘आगमे तिविहे’ पाठसंख्या ३, फिर २४ से लेकर ४३ तक से सभी पाठों को पढ़े। बाद में ‘इच्छामि पडिक्कमिउं’ पाठसंख्या २, फिर दो <sup>१</sup>‘इच्छामि खमासमणो!’ पाठसंख्या २२ पढ़े।

इसके बाद पांच पदों की वन्दना करे।

### पंचम आवश्यक :

पांचवें आवश्यक में पहले ‘नमोक्कार मन्त्र’ पाठसंख्या १, ‘करेमि भन्ते !’ पाठसंख्या ६, ‘इच्छामि पडिक्कमिउं’ (इच्छामि ठामि काउस्सग्गं), पाठसंख्या २, ‘तस्स उत्तरी’ पाठसंख्या ६-७ पढ़कर, फिर ४, ‘लोगस्स’ का ‘काउस्सग्ग’ करे। फिर ‘नमो अरिहंताणं’ बोलकर काउस्सग्ग पारे। फिर ‘ध्यान हे विषय’ पाठसंख्या ५० बोलकर, एक बार लोगस्स पाठसंख्या ८ उच्चारण से बोले। फिर दो ‘इच्छामि खमासमणो !’ पाठसंख्या २२ पढ़े। बाद में छठे आवश्यक की आज्ञा ले।

### षष्ठ आवश्यक :

छठे आवश्यक में गुरु से यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे। यदि गुरु न हों, तो स्वयं ही प्रत्याख्यान कर ले। फिर पाठसंख्या ५१ कहकर, फिर यह बोले—

षट् आवश्यकों में से किसी भी आवश्यक में जानते-अजानते जो कोई अतिचार लगा हो, तथा पाठ बोलने में मात्रा, अनुस्वार, अक्षर, पद, अधिक, न्यून, आगे, पीछे, एवं विपरीत कहे हों, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

‘गतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमानकाल का संवर, और भविष्यतकाल का प्रत्याख्यान।’ इतना कहकर बैठ जाय और

१. यह पाठ कहीं पञ्चम आवश्यक के प्रारम्भ में भी पढ़ा जाता है।

फिर दाहिना घुटना नीचे करके एवं बांझा घुटना ऊँचा करके दो 'नमोत्थुणं' पाठसंख्या १० बोले ।

बाद में साधु महाराज को वन्दना करे फिर वहाँ स्थित समस्त श्रावकों से क्षमापना करे ।

टिप्पणी :

[१] प्रतिक्रमण करने वाले पुरुष एवं स्त्रियों को इतना ध्यान रखना चाहिए, कि अतिचार-आलोचना के पाठों में जहाँ पर 'आलोचना करता हूँ, पाठ है, वहाँ पुरुषों को 'आलोचना करता हूँ', यह बोलना चाहिए, और स्त्रियों को 'आलोचना करती हूँ', यह बोलना चाहिए ।

[२] यहाँ प्रतिक्रमण करने की जो विधि दी गई है, वह स्थूलरूप में दी गई है, केवल रूप-रेखा दी गई है, पूर्ण विधि नहीं है; क्योंकि श्रावक प्रतिक्रमण की एक विधि नहीं है । विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न विधि प्रचलित है । अतः प्रतिक्रमण की पूर्ण विधि देना शक्य नहीं है । जहाँ पर जैसी विधि प्रचलित हो, तदनुसार कर लेना चाहिए ।

### अरिहंत-वन्दन :

रोग-द्वेष महामल्ल घोर घन-घाति कर्म,  
 नष्ट कर पूर्ण सर्वज्ञ-पद पाया है ।  
 शान्ति का सुराज्य समोसरण में कैसा सौम्य,  
 सिंहनी ने दुग्ध मृग-शिशु को पिलाया है ॥  
 अज्ञानान्धकार-मग्न विश्व को दयाद्र' होके,  
 सत्य-धर्म-ज्योति का प्रकाश दिखलाया है ।  
 'अमर' सभक्ति भाव बार-बार वन्दनार्थ,  
 अरिहंत, चरणों में मस्तक भुकाया है ॥

### सिद्ध-वन्दन :

जन्म-जरा-मरण के चक्र से पृथक् भये,  
 पूर्ण शुद्ध चिदानन्द शुद्ध रूप पाया है ।  
 मनसा अचिन्त्य तथा वचसा अवाच्य सदा,  
 क्षायक स्वभाव में निजातमा रमाया है ॥  
 संकल्प-विकल्प-शून्य निरंजन निराकार,  
 माया का प्रणंच जड़-मूल से नशाया है ।  
 'अमर' सभक्ति-भाव बार-बार वन्दनार्थ,  
 पूज्य सिद्ध-चरणों में मस्तक भुकाया है ॥

### आचार्य-वन्दन :

आगमों के भिन्न-भिन्न रहस्यों के ज्ञाता ज्ञानी,  
 उग्रतम चारित्र का पथ अपनाया है ।  
 पक्षपातता से शून्य यथायोग्य न्यायकारी,  
 पतितों को शुद्ध कर धर्म में लगाया है ॥  
 सूर्य-सा प्रचंड तेज प्रतिरोधी जावे भ्रंश,  
 संघ में अखंड निज शासन चलाया है ।  
 'अमर' सभक्तिभाव बार बार वन्दनार्थ,  
 गच्छाचार्य-चरणों में मस्तक झुकाया है ॥

### उपाध्याय-वन्दन :

मंद-बुद्धि शिष्यों को भी विद्या का अभ्यास करा  
 दिग्गज सिद्धान्तवादी पंडित बनाया है ।  
 पाखंडी जनों का गर्व खवे कर जगत् में,  
 अनेकान्तता का जय-केतु फहराया है ।  
 शंका-समाधान द्वारा भविको को बोध दे के,  
 देश, परदेश ज्ञान-मानु चमकाया है ।  
 'अमर' सभक्ति-भाव बार-बार वन्दनार्थ,  
 उपाध्याय-चरणों में मस्तक झुकाया है ॥

## साधु-वन्दन :

शत्रु और मित्र तथा मान और अपमान,  
 सुख और दुःख द्वैत-चिन्तन हटाया है ।  
 मैत्री और करुणा समान सब प्राणियों पे,  
 क्रोधादि-कषाय-दावानल भी बुझाया है ॥  
 ज्ञान और क्रिया के समान दृढ़ उपासक,  
 भीषण समर कर्म-चमू से मचाया है ।  
 'अमर' सभक्ति-भाव बार-बार वन्दनार्थ,  
 त्यागी-मुनि-चरणों में मस्तक झुकाया है ॥

## धर्म-गुरु-वन्दन :

भीम-भव-वन से निकाला बड़ी कोशिशों से,  
 मोक्ष के विशुद्ध राज-मार्ग पै चलाया है ।  
 संकट में धर्म-श्रद्धा ढीली-ढाली होने पर,  
 समझा-बुझा के दृढ़ साहस बँधाया है ॥  
 कड़ता का नहीं लेश सुधा-सी सरस वाणी,  
 धर्म-प्रवचन नित्य प्रेम से सुनाया है ।  
 'अमर' सभक्ति भाव बार-बार वन्दनार्थ'  
 धर्मगुरु-चरणों में मस्तक झुकाया है ॥

## संक्षिप्तप्रसिद्धमण

: १ :

जं जं मणेण बद्ध,  
जं जं भाषाए भासियं पावं ।  
जं जं काएण कयं,  
मिच्छामि दुक्कडं तस्य ॥  
—आवश्यक सूत्र

: २ :

खामेमि सव्वे जीवे,  
सव्वे बीणा खमन्तु में ।  
मित्ती मे सव्वभूएसु,  
वेरं मञ्झं न केणइ ॥

: ३ :

सव्वस्य समणसंघस्य,  
भगवओ अंजलि करिअ सीसे ।  
सव्वे खमाबइता खमामि,  
सव्वस्स अहयं पि ॥

: ४ :

आयरिण उवज्जाए,  
सीसे साहम्मिए कुलगणे य ।  
जे मे कैइ कसाया,  
सव्वे तिविहेण खामेमि ।



: ५ :

सारं दंसण नाणं,  
 सारं तव नियम संजम सीलं ।  
 सारं जिणवर धम्मं,  
 सारं संलेहणा मरणं ॥

: ६ :

एगो मे सासओ अप्पा,  
 नाण दंसण — संजुओ ।  
 सेसा में बाहिरा भावा,  
 सव्वे संजोग — लक्खणा ॥

: ७ :

मज्जं विसय कसाया,  
 निदा विकहा व पंचमी भणिया ।  
 ए ए पंच पमाया,  
 जीवे पाडन्ति संसारे ॥

## मन्त्र-साधना

१. ॐ ह्रीं अहं
२. ॐ ह्रीं
३. अहम्, अहम्, अहम्
४. ओम् ह्रीं, ह्रीं, ह्रूं, ह्री, ह्रूं;  
अ सि आ उ षा  
सम्यग् दर्शन—ज्ञान,  
चारित्र्येभ्यो नमः
५. ॐ नमो सिद्धाणं
६. ॐ नमो साहूणं
७. ॐ अहंमुख कमल—वासिनि,  
पापात्मक्षयंकरि श्रुत—ज्ञान—ज्वाला- -  
सहस्र ज्वलिते, सरस्वति !  
मत्पापं हन, हन, दह, दह,  
क्षीं, क्षीं, क्षूं, क्षी, क्षूं;  
क्षीर-धवले, अमृतसंभवे,  
वँ, वँ, ह्रैं, ह्रैं, स्वाहा

## शास्त्र—मन्त्र

१. इह लोए, पर लोए,  
सुहाण—मूलं नवकारो ।
२. नमो जिणाणं,  
जिय - भयाणं ।
३. नमो चउवीसाए  
तित्थगराणं,  
उसभादि महावीर पड्डवसाणाणं

## ध्वनि—जाप

१. नारायण. नारायण, नारायण रे ।  
वीरायण, वीरायण, वीरायण रे ।
२. देह—विनाशी, मैं अविनाशी ।  
अजर — अमर पद मेरा रे ।
३. श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर,  
त्रिशला नन्दन हर मेरी पीर ।
४. भज महावीर, भज महावीर;  
भज मन प्यारे, भज महावीर ।

५. अरिहन्त भजो,  
 अरिहन्त भजो ।  
 अरिहन्त बनो,  
 अरिहन्त भजो ।
६. भगवन्त भजो,  
 भगवन्त भजो ।  
 भगवन्त बनो,  
 भगवन्त भजो ।
७. महावीर भजो,  
 महावीर भजो ।  
 महावीर बनो,  
 महावीर भजो ।

## उपसर्गहर-स्तोत्रं

उपसर्गहरं पासं,  
पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।  
विसहर— विसनिन्नासं,  
मंगल—कल्लाण—आवासं ॥१॥

विसहर फुल्लिगमंतं,  
कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।  
तस्स गह् रोगमारी—  
दुट्टजरा जति उपसामं ॥२॥

चिट्ठुदु दूरे मंतो,  
तुज्झ पणामो वि बड्डफलो होइ ।  
नर-तिरिएसु वि जीवा,  
पावंति न दुक्ख—दोगच्चं ॥३॥

तुह सम्मत्ते लद्धे,  
चिन्तामणिकप्पपायवब्भहिए ।  
पावंति अविग्घेणं,  
जीवा अयरामर ठाणं ॥४॥

इअ संथुओ महायस !  
भत्तिब्भर—निब्भरैण हियएण ।  
ता देव ! दिज्ज बोहिं,  
भवे भवे पास जिणचंद ! ॥५॥

## महावीर स्तुति

नमो दुर्वार - रागादि,  
 वैरि - वार निवारणे ।  
 अहंते योगि - नाथाय,  
 महावीराय तायिने ।  
 भव बीजांकुर - जननाः,  
 रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।  
 ब्रह्मा वा विष्णु वा,  
 हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

—अश्वत्थार्य हेमचन्द्र

## परमेष्ठि-वन्दना

नमस्कार हो अरिहन्तों को, राग—द्वेष रिपु—संहारी ।  
नमस्कार हो श्री-सिद्धों को, अजर अमर नित अविकारी ॥



नमस्कार हो आचार्यों को, सघ—शिरोमणि आचारी ।  
नमस्कार हो उपाध्यायों को, अक्षय-श्रुत-निधि के धारी ॥



नमस्कार हो साधु सभी को, जग में जग—ममता मारी ।  
त्याग दिये वैराग्य—भाव से, भोग—भाव सब संसारी ॥



पांच पदों को नमस्कार यह, नष्ट करे कलिमल भारी ।  
मंगल-मूल अखिल मंगलमय, पाप—भीरु जनता तारी ॥

—उपाध्याय श्री अमरमुनि

## मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक जोते सब जग जान लिया,  
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया ।  
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधोन कहा,  
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसा में लान रहो ॥१॥

विषयों की आशा नहीं जिनको साम्यभाव धन रखते हैं,  
निज-पर के हित-साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं ।  
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,  
ऐसे ज्ञाना साधु जगत् के दुःखसमूह का हरते हैं ॥२॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,  
उन्हीं जैसा चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।  
नहीं सताऊँ किसी जीव का झूठ कभी नहीं कहा करूँ,  
परधन-वनिता<sup>१</sup> पर न लुभाऊँ सन्तोषामृत पिया करूँ ॥३॥

अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,  
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ।  
रहे भावना ऐसी मेरी सरल-सत्य व्यवहार करूँ,  
बन जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ ॥४॥

मैत्री-भाव जगत् में मेरा सब जीवों पर नित्य रहे,  
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर में करुणा स्रोत बहे ।  
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतों पर क्षोभ नहीं मुझ को आवे,  
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसा परिणति हो जावे ॥५॥

१ स्त्रियाँ भतां पढ़ें । पुरुष वनिता पढ़ें ।



गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,  
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ।  
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,  
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,  
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे ।  
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,  
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥

होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे,  
पर्वत नदी स्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे ।  
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे,  
इष्ट-वियोग अनिष्टयोग में सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

सुखी रहें सब जीव जगत् के कोई कभी न घबरावे,  
वैर, पाप, अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे ।  
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे,  
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावे ॥९॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में वृष्टि समय पर हुआ करे,  
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का क्रिया करे ।  
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांति से जिया करे,  
परम अहिंसा-धर्म जगत् में फैल सर्व-हित किया करे ॥१०॥

फँले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे,  
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं कोई सुख से कहा करे ।  
बन कर सब 'युगवीर' हृदय से धर्मोन्नति-रत रहा करें,  
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से सब दुःख-संकट सहा करें ॥११॥

# सन्मति ज्ञानपीठ का

## सूत्रसाहित्य

१. श्रमणसूत्र (सभाष्य)
२. सामायिकसूत्र (सभाष्य)
३. नंदीसुत्तं (मूल)
४. जैनागम-पाठमाला
५. अनुत्तरोपपातिक सूत्र
६. प्रश्नव्याकरण सूत्र (व्याख्यासहित)
७. सूक्ति-त्रिवेणी (त्रिधारा)
८. श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्र
९. तत्त्वार्थसूत्र (अनुवाद)
१०. उत्तराध्ययनसूत्र (अनुवाद)
११. लघुसामायिकसूत्र
१२. समणसुत्तं
१३. निशेथिसूत्र भाग १-२-३-४

प्राप्ति-स्थान

सन्मति ज्ञानपीठ

लोहामण्डो, आगरा-२